शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 15 अंक : 7 1 फरवरी 2023

माघ-फाल्गुन मास, विक्रम संवत् 2079

संस्थापक
स्व. मुकुन्दराव कुलकर्णी

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल
शिवानन्द सिन्दनकेरा
जी. लक्ष्मण

सम्पादक
डॉ. शिवशरण कौशिक

सह सम्पादक
भरत शर्मा

संपादक मंडल
प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. दीनदयाल गुप्ता

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय 'भारतीय'**

कार्यालय प्रभारी : **आलोक चतुर्वेदी**

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली - 110053
दूरभाष : 8920959986

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

वार्षिक शुल्क ₹ 250/-
दस वर्षीय शुल्क ₹ 2000/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

समग्र शिक्षा के आधार ❑ डॉ. शंभु दयाल अग्रवाल

जो विद्या मिली है, वह हमें कमाने लायक बनाए। लेकिन विद्यार्जन का यही एकमात्र उद्देश्य नहीं। नीतिवान शिक्षा के अभाव में न स्त्री मधुरभाषिणी या प्रिया होगी, और न संतानें आज्ञाकारी! चोरी भी एक विद्या है; अच्छी आमदनी होती है! पर चोरी विद्या सिखाने को कोई प्रशिक्षण-केंद्र नहीं खोलता; क्योंकि यह स्वस्थ समाज के विपरीत है। शिक्षा इस तरह की विद्या को प्रोत्साहित नहीं करती। गलत काम होने पर भी चोरी एक विद्या है, पर गलत बात सिखाने पर उसे शिक्षा नहीं, कुशिक्षा कहते हैं। शिक्षा और विद्या में यही अंतर है। इसलिए चरित्र निर्माण 'अर्थकरी विद्या' से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

11

अनुक्रम

3.	सम्पादकीय	- डॉ. शिवशरण कौशिक
4.	शिक्षा परिसर और विद्यार्थी चरित्र निर्माण	- प्रो. प्रकाश चन्द्र अग्रवाल
8.	शिक्षा परिसर का आत्म-तत्त्व शिक्षक	- प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा
14.	शिक्षा परिसर और विद्यार्थी व्यवहार	- डॉ. यदु शर्मा
16.	शिक्षा परिसरों के पर्यावरण से हो चरित्र निर्माण	- डॉ. ओम प्रकाश पारीक
19.	शिक्षा परिसरों में अनुशासन	- डॉ. रेणु अरोड़ा
24.	Analyzing the Problems of Students ...	- Dr. Sindhu Poudyal
27.	Smart Campus : A Step Towards ...	- Dr. Jaya Sharma
30.	भारतीय धर्म संस्थानों की संस्कार पद्धति	- डॉ. सुनीता कुमारी
31.	स्वराज 75 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति	- गोविन्द सिंह
32.	विकसित भारत का निर्माण	- डॉ. भारती गुप्ता
34.	भारतीय धर्म-संस्कृति में संस्कार पद्धति	- डॉ. आदित्य कुमार गुप्त
38.	भारतीय 'धर्मशास्त्र व नीतिशास्त्र' में निहित...	- डॉ. प्रियंका कुमारी
40.	'व्रज' से 'ब्रज' तक : एक भाव- यात्रा	- डॉ. कृष्ण चन्द्र गोस्वामी

Teaching and Learning and Environmental Context

❑ **Dr. T.S. Girishkumar**

The process of education under these contexts do carry such categories knowingly or unknowingly. In this process, Bharatiya Sanskriti is hardly touched upon, and European individualism and self-orientation becomes influential. This being the social context, education carried out in such context fail to approximate the desideratum of Vasudhaiva kutumbakam or Ekamsad vipra bahudhavadanti. The example of Kerala society is indeed, glaring and at the same time indicates impending disaster of disintegrating societies.

21

संपादकीय

डॉ. शिवशरण कौशिक
सम्पादक

शिक्षा की सार्थकता समाज को गतिशील बनाने और सफलता उसे नई तथा रचनात्मक दिशा देने में है। शिक्षा और मानव का सांस्कृतिक विकास परस्पर अंतर्ग्रथित है। इसीलिए शिक्षा–प्रदाता संस्थानों के परिसरों के स्वस्थ्य और क्रियात्मक वातावरण की भूमिका सदैव बनी रहती है। शिक्षा–प्रबंधकों द्वारा प्रदत्त परिस्थितियों का आनंददायी, सुविधा–संपन्न और कल्पनादर्शी होना शिक्षार्थियों की उत्तरोत्तर प्रगति और सर्वांगीण विकास के लिए परमावश्यक है। वर्तमान में एक नई शक्ति के रूप में उदीयमान श्रेष्ठ और समर्थ भारत की शिक्षा व्यवस्था में निरंतर ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक पक्षों में होने वाले प्रभावकारी परिवर्तनों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों में गहनता से विचार–विमर्श के उपरांत सम्मिलित किया गया है। आज तकनीक के असीमित विकास और प्रौद्योगिकी के वृहद् विस्तार के कारण बदली हुई चुनौतियों का सीधा प्रभाव विद्यार्थी जगत से जुड़ा हुआ है। जो परिस्थितियाँ शिक्षा–परिसर में विद्यार्थियों को उपलब्ध होती हैं उन्हीं के अनुरूप उनका विकास भी होता है। आज ज्ञान के वैश्वीकरण ने और वैज्ञानिक आविष्कारों ने समय तथा दूरी पर विजय प्राप्त कर ली है। एक राष्ट्र में होने वाले शैक्षिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और राजनीतिक परिवर्तनों का प्रभाव तत्काल विश्व के दूसरे अन्य देशों पर भी किसी न किसी रूप में अवश्य ही पड़ता है। इन सब नवीनतम परिस्थितियों के दृष्टिगत नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण शिक्षार्थी, शिक्षक, शिक्षा–संस्थान और शिक्षा–प्रबंधन के चौतरफा समन्वय के साथ किया गया है। विद्यार्थियों में अनुशासित रहकर नित नई अपनी जिज्ञासाओं के हल खोजने की प्रवृत्ति के विकास के साथ शिक्षण संस्थानों का भी दायित्व है कि वे इन सरस्वती–मंदिरों का केवल लाभकारी संस्थानों के रूप में उपयोग न करें।

वास्तविकता यह है कि इस देश की शिक्षा–व्यवस्था स्वतंत्रतापूर्व तक पूर्णतया अंग्रेजों के नियंत्रण में रही; और उनकी प्राथमिकता बिल्कुल भी भारत को श्रेष्ठ बनाने की नहीं थी। इससे त्रुटिपूर्ण ही नहीं द्वेषपूर्ण शिक्षण–सामग्री विद्यार्थियों के मध्य जानबूझ कर उपलब्ध कराई गई। ये सब उनके देश–विभाजन की नीति का परिणाम थीं। इसलिए आज शिक्षा–परिसरों को पुनः स्वस्थ वातावरण और सम्यक पाठ्यक्रमों के साथ भारतीय बनाया जाना ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्राथमिक उद्देश्य है जिससे हमारा भारत एकात्म रहे; संयुक्त रहे; समृद्ध रहे! शैक्षिक मंथन के इस अंक में शिक्षा–परिसर के इन्हीं पहलुओं पर कुछ विवेचनात्मक आलेख सम्मिलित हैं।

आज भारत विश्व के विकासशील ही नहीं अपितु विकसित देशों की दृष्टि में भी उभरती हुई अर्थव्यवस्था, सामर्थ्यवान सामरिक शक्ति तथा परिपक्व लोकतंत्र के रूप में स्थान बना चुका है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हाल–ही में दुनिया के उन्नीस समर्थ और विकसित देशों की अर्थव्यवस्था और योरोपीय संघ के समूह जी–20 की आगामी एक वर्ष तक प्राप्त अध्यक्षता है। भारत की सदैव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की दृष्टि रही है तथा भारतीय संस्कृति में मनुष्य, पशु–पक्षी, वनस्पति–प्रकृति के साथ प्राणिमात्र के कल्याण की भावना रही है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए हमारे प्रधानमंत्री और जी–20 के वर्तमान अध्यक्ष ने सभी सदस्य–देशों को 'विश्व–बंधुत्व' और 'विश्व–कल्याण' का संदेश दिया है। भारत कभी भी युद्धों का समर्थक नहीं रहा। इसलिए भारत की यह प्रमुख भागीदारी उल्लेखनीय है।

ध्यातव्य है कि आज ही भारत सरकार का केन्द्रीय बजट पारित किया गया है जिसमें सभी वर्गों के हितों के रक्षार्थ प्रावधान किए गए हैं। इस बजट में निम्न आय–वर्ग, मध्य आय–वर्ग से लेकर समाज–जीवन के विविध क्षेत्रों में कार्य करने वाले लोगों के साथ देश के धारणक्षम विकास की दूरगामी योजना दृष्टिगोचर होती है। अतएव, नवीनतम बजट प्रस्तावों का स्वागत! ❑

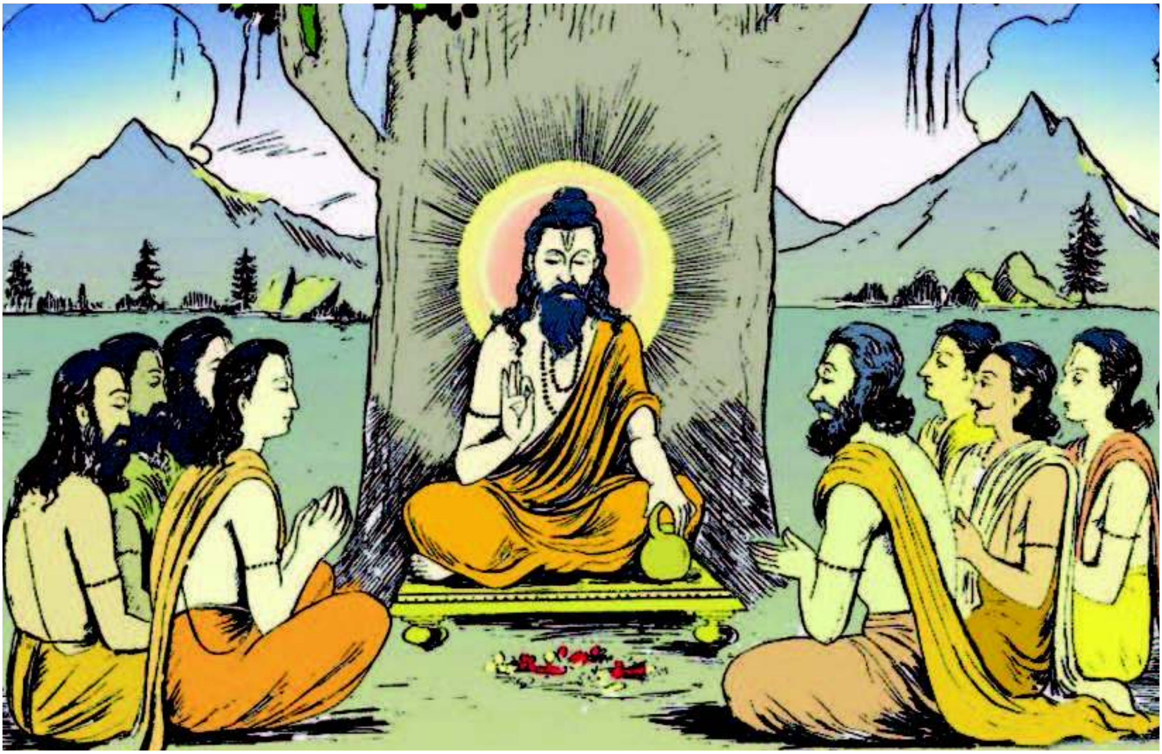

शिक्षा परिसर और विद्यार्थी चरित्र निर्माण

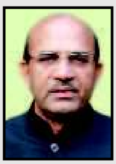

प्रो. प्रकाश चन्द्र अग्रवाल
प्राचार्य,
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान,
भुवनेश्वर (ओडिसा)

हर देश की अपनी खास सांस्कृतिक पहचान होती है तथा शिक्षा उस देश की भाषा, सभ्यता, संस्कृति और जीवन के आचरण से जुड़ा विषय है। अत: शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यावसायिक दक्षता प्राप्त युवा शक्ति का निर्माण करना ही नहीं, बल्कि युवाओं का चरित्र निर्माण और उसके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास करना भी है। अत: शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे व्यक्ति अपने जीवन में मानवीय जीवन-मूल्यों का उचित समावेशन कर एक आदर्श नागरिक के तौर पर अपना जीवन निर्वाह करते हुए देश और समाज की प्रगति में भी भागीदार हो सके।

व्यक्तित्व का विकास चरित्र से होता है और चरित्र ही व्यक्तित्व का प्रमुख कारक है। हर मनुष्य का अपना-अपना व्यक्तित्व होता है; वही मनुष्य की विशिष्ट पहचान है। कोटि-कोटि मनुष्यों की भीड़ में भी वह अपने निराले व्यक्तित्व के कारण पहचान लिया जाता है। प्रकृति का नियम है कि हर मनुष्य की आकृति दूसरे से भिन्न होती है। यह भेद आकृति तक ही सीमित नहीं, उसके स्वभाव, संस्कार और प्रवृत्तियों में भी इसी प्रकार भेद देखने को मिलता है।

देखे बिना ही किसी गंधयुक्त फूल की सुगंध से हम उसकी पहचान कर सकते हैं। व्यक्ति का चरित्र भी गुलाब की खुशबू के समान स्वयं का परिचायक होता है। परिचित वस्तुओं में ही हम इस भेद की पहचान आसानी से कर सकते हैं। यह हमारा दृष्टि-दोष है कि हमारी आँखें सूक्ष्म भेद और प्रकृति के सूक्ष्म परिवर्तनों को यथावत नहीं परख पातीं। मानव-चरित्र को परखना भी बड़ा कठिन कार्य है, पर असंभव नहीं। कठिन वह केवल इसलिए नहीं है कि उसमें विविध तत्वों, कारकों और आयामों का सम्मिश्रण है, बल्कि इसलिए भी है कि नित्य नई परिस्थितियों के आघात-प्रतिघात में वह बदलता रहता है। वह चेतन वस्तु है, परिवर्तन उसका स्वभाव है। प्रयोगशाला की परीक्षण नली में रखकर उसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता। विज्ञान ने मानव देह को पहचानने में बड़ी सफलता पाई है, किंतु उसकी आंतरिक प्रयोगशाला अभी तक एक गूढ़ रहस्य बनी हुई है। इस दीवार के अंदर की मशीनरी किस तरह काम करती है, इस प्रश्न का उत्तर अभी तक घने कोहरे में छिपा हुआ है; जो कुछ हम जानते हैं केवल हमारी बुद्धि का अनुमान है। उसके विश्लेषण का प्रयत्न सदियों से हो रहा है। हजारों वर्ष पहले हमारे विचारकों ने

उसका विश्लेषण किया था; आज के मनोवैज्ञानिक भी इसी में लगे हैं।

चरित्र शब्द मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व को प्रकट करता है; प्रवृत्तियों का संयम चरित्र का सबसे बड़ा आधार है। भारतीय शास्त्रों में इसे आत्मा और आत्मिक स्थिति से जोड़ा गया है। उपनिषदों के अनुसार-

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।

बृहदारण्यकोपनिषद् 2-4-5 ।

अर्थात् यह आत्मा ही देखने (जानने) योग्य, सुनने योग्य, मनन करने योग्य तथा निदिध्यासन (ध्यान) करने योग्य है।

विश्व की महान् विभूतियों ने मानव जीवन में उत्तम चरित्र के होने पर सदैव जोर दिया है। यूनान के महान दार्शनिक सुकरात ने बार-बार यही कहा था, 'अपने आप को पहचानो।' अर्थात् अपनी प्रवृत्तियों को पहचानो, अपने चरित्र को पहचानो। अब्राहम लिंकन के अनुसार 'चरित्र वृक्ष के समान है और यश उसकी छाया।' अत: हम किसी विषय में जो सोचते हैं वह छाया है, वास्तविक वस्तु तो चरित्र है। महात्मा गाँधी ने कहा, 'यदि चरित्र के बजाय मनुष्य की मेहनत को उसके कपड़ों से आंका जाए तो महान् लोगों की संख्या सौ गुना बढ़ जाय!' साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद के शब्दों में, 'जिसमें दया नहीं, धर्म नहीं, निज भाषा से प्रेम नहीं, चरित्र नहीं, आत्मबल नहीं, वह भी कोई आदमी है?' रामकृष्ण परमहंस भी हमेशा चरित्र पर ही ज़ोर देते रहे - ''चरित्रवान बनो संसार स्वयं तुम पर मुग्ध होगा। फूल खिलने दोगे तो मधुमक्खियाँ स्वत: ही चली आएँगी।'' अत: चरित्र निर्माण ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

इससे मनोबल बढ़ेगा, साहस का विकास होगा, जीवन का लक्ष्य मिलेगा, सद्गुणों में वृद्धि होगी और उद्देश्यों के प्रति लगन जागृत होगी।

भारत जैसे देश में व्यक्तित्व चरित्र के आधार पर नापा जाता है। भारतीय चिंतन परंपरा में व्यक्तित्व-विकास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्यार्थियों में श्रेष्ठ गुणों का समावेश होना चाहिए। मानसिक संतुलन, उत्तम विचार एवं आत्मविश्वास आदि ऐसे गुण हैं जो चरित्र निर्माण करते हैं। विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण विद्यार्थी डिग्री के साथ समाज में उत्तम चरित्र के साथ प्रवेश करें। आज के संदर्भ में यह बहुत जरूरी है, क्योंकि व्यक्ति से ही समाज और देश बनता है।

राष्ट्रीय शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास के लगातार प्रयासों ने हम सब में इस उद्देश्य की पुष्टि के लिए नव ऊर्जा के संचार का एक मार्ग प्रदान किया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए शैक्षणिक रणनीति तैयार करती है। इस शिक्षा नीति के माध्यम से बच्चों की पढ़ाई के साथ-साथ उनके चरित्र निर्माण पर विशेष बल दिया गया है जो विद्यार्थियों के भावी जीवन के लिए सुसंस्कृत, सुदृढ़ व लाभदायक होगा। अर्थात् हम यह कह सकते हैं कि जीवन के समस्त गुणों, ऐश्वर्य, समृद्धि और वैभव की आधारशिला सदाचार है, सच्चरित्रता है। समय के साथ होने वाले शाश्वत परिवर्तन महसूस करवाते हैं कि शिक्षा में भी परिवर्तन लाया जाए। इन्हीं परिवर्तनों के चलते हमारे देश में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लाई गई। हमारे जीवन में चरित्र के महत्त्व को संदर्भित करते हुए भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने कहा था, ''किसी शिक्षित चरित्रहीन व्यक्ति की अपेक्षा एक अशिक्षित चरित्रवान व्यक्ति समाज के लिए अधिक उपयोगी होता है।'' तात्पर्य यह है कि जीवन के लिए सबसे अनमोल चीज़ व्यक्ति का चरित्र है।

21वीं सदी में दुनिया में परचम लहराने को तैयार युवाओं का 'नया भारत' आर्थिक रूप से तो तैयारी कर ही रहा है, लेकिन यह जरूरी है कि न्यू इंडिया संतुलित, चरित्रवान, सामाजिक दायित्व-बोध और राष्ट्रप्रेम के भाव से भी युक्त हो, तभी भारत पुन: जगद्गुरु बन पाएगा। आशा है कि वैल्यू एडिशन कोर्सेस देश के विश्वविद्यालयों के लिए इस संदर्भ में एक मॉडल होंगे।

पश्चिम से प्रभावित जीवन शैली, तकनीक के खेल में सिमटती दुनिया, रियल लाइफ के बजाय वर्चुअल लाइफ और इंटरनेट मीडिया का बढ़ता वर्चस्व शारीरिक श्रमपरक खेलकूद की जगह गैजेट गेम्स में उलझते जीवन और बढ़ते एकाकीपन ने देश के युवाओं को एक खतरनाक गिरफ्त में लेना शुरू किया है। इसका दुष्परिणाम है ऐसे असंतुलित व्यक्तित्व का निर्माण जो स्वयं अपने लिए ही नहीं, बल्कि परिवार, समाज और देश के लिए भी खतरनाक और अनुत्पादक साबित हो रहा है। इन सभी चीजों से निपटने के लिए विद्यालयीन परिवेश में एक ऐसा वातावरण तैयार करना आवश्यक हो गया है जो व्यक्ति के चरित्र विकास में सहायक हो। अत: चारित्रिक विकास के सुअवसर, संस्थितियाँ और संस्कार देना शिक्षा परिसर का मूल उद्देश्य है।

21वीं सदी में दुनिया में परचम लहराने को तैयार युवाओं का जोश 'नया भारत' को आर्थिक रूप से तो तैयारी कर ही रहा है, लेकिन यह भी जरूरी है कि हमारे युवा संतुलित, चरित्रवान, सामाजिक दायित्वबोध व राष्ट्रप्रेम के भाव से भी परिपूर्ण हों। संघ प्रचारक महान व्यक्तित्व के धनी मा. गोलवलकरजी ने कहा है, ''चरित्रवान को सब कुछ उपलब्ध है, और चरित्रहीन उपलब्ध को भी खो देते हैं।''

चरित्र निर्माण मनुष्य जीवन की सफलता के लिए परमावश्यक है; इसमें शिक्षक, अभिभावक व विद्यालय का वातावरण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि कोई भी कड़ी कमजोर रह गई तो व्यक्तित्व रूपी इमारत मजबूत और खूबसूरत नहीं बन सकती। सच्चाई, ईमानदारी, दृढ़ विश्वास, परिश्रम एवं कर्मठता जैसे मानवीय मूल्यों की स्थापना व्यक्तित्व को निखारती है। ऐसा व्यक्ति न केवल परिवार, अपितु समाज और देश के लिए बहुमूल्य धरोहर बन जाता है। अतः एक स्वस्थ देश के निर्माण के लिए शिक्षा की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जो छात्रों में नैतिक मूल्यों का विकास कर सके।

शिक्षा परिसर में छात्रों के अच्छे चरित्र निर्माण के लिए खेल-कूद की उपर्युक्त सुविधा और संस्कारक्षम शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है। संकल्प, समर्पण और कड़ी मेहनत सफलता के साधन हैं। खेल-कूद को बढ़ावा देने पर बच्चों में आपसी सद्भाव बढ़ेगा; उनके नैतिक विकास में सहगामी होगा। विद्यार्थियों में मानवीय मूल्य सहिष्णुता का तभी विकास संभव है जब विद्यालय परिसर में सभी मिलजुलकर खेलें और आपसी सद्भाव को बनाए रखें। आज के विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में दी जाने वाली उच्च शिक्षा में इसका अभाव है। विदेशी नकल पर चल रही इस शिक्षा पद्धति से कोई भी उज्ज्वल भविष्य की कल्पना नहीं कर सकता। हमें विकासोन्मुख युवाओं के चरित्र निर्माण को सही दिशा देकर राष्ट्र निर्माण व उत्थान में उनके योगदान को सुनिश्चित करना है।

व्यक्ति को चरित्रवान बनाने के लिए सबसे जरूरी तत्त्व है नैतिक शिक्षा। संस्कारित जीवन ही समाज-हित का प्रमुख साधन है। इससे भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, छल-कपट व असहिष्णुता आदि दोषों का निवारण होता है। मानवतावादी चेतना का विकास भी इसी से संभव है। शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य छात्रों में सद्गुणों तथा कर्त्तव्यपरायणता का विकास करना है। इसके लिए भौतिकवाद के दृष्टिकोण को त्यागकर आत्मिक विकास तथा उपनिषदों की भांति देवत्व की ओर ले जाने वाला शिक्षा निकाय होना आवश्यक हो गया है। सबको बचपन में ही उसके अनुकूल शिक्षा दी जाए। यह शिक्षा चरित्र निर्माण से शुरू होती है। वैदिक संस्कृति के संस्कारों से युक्त शिक्षा इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होगी।

भारत जैसे देश में व्यक्तित्व चरित्र के आधार पर नापा जाता है। पर्यावरण, नैतिक मूल्यों का विघटन, हत्या जैसी समस्याएँ चरित्र से संबंधित हैं। भारतीय चिंतन परंपरा में व्यक्तित्व-विकास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्यार्थियों में श्रेष्ठ गुणों का समावेश होना चाहिए। मानसिक संतुलन, उत्तम विचार एवं आत्मविश्वास आदि ऐसे गुण हैं जो चरित्र निर्माण करते हैं। विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण विद्यार्थी डिग्री के साथ समाज में उत्तम चरित्र के साथ प्रवेश करें। आज के संदर्भ में यह बहुत जरूरी है, क्योंकि व्यक्ति से ही समाज और देश बनता है।

शिक्षक और वर्तमान मूल्यों पर प्रकाश डालें तो लगता है कि चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व का विकास मूलतः तीन बातों पर केंद्रित है- सुविधा, संबंध और समाज;

जिनके जरिए आदर्श शिक्षक, विद्यार्थी और समाज की कल्पना को साकार किया जा सकता है। तीनों ही चरित्र निर्माण के आधार स्तंभ हैं। हमारे व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास तभी संभव है जब इन तीनों को हम अपने अंदर समाहित करें। आगामी वर्षों में नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन से अहम बदलाव देखने को मिलेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारतीय परंपरा और इतिहास के सही रूप को प्रदर्शित करने के अलावा देश के युवाओं के चरित्र निर्माण में भी अहम भूमिका निभाएगी।

यह अनायास नहीं कि एनईपी-2020 की घोषणा के साथ ही मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया। 'मानव संसाधन' नाम से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कि मानवीय संवेदना, भावों एवं संस्कारों से रहित मनुष्य मानो एक भौतिक संसाधन मात्र हो, जिसे इस्तेमाल करने के बाद फेंक दिया जाए! यह एक तरह से पश्चिम के भौतिकवादी चिंतन से प्रेरित था। वास्तव में शिक्षा अभिधान मनुष्य के भौतिकवादी पहलू के साथ-साथ चारित्रिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक आदि सभी पक्षों को समाहित करता है, जो भारतीय चिंतन-पद्धति का प्रतिबिंबन है। युवाओं की इन्हीं जरूरतों को ध्यान में रखकर एनईपी-2020 के क्रियान्वयन की दिशा में देश के सभी विश्वविद्यालयों द्वारा' वैल्यू एडिशन कोर्सेस' अर्थात् 'मूल्य संवर्धन पाठ्यक्रम' बनाए गए हैं। यह एक अभिनव और ऐतिहासिक कदम है।

आए दिन युवाओं से संबंधित अनेक असामान्य और डरावनी घटनाएँ हमें देश भर से सुनने को मिलती हैं। शिक्षा के धरातल पर इन्हीं से निपटने के लिए एक सुचिंतित, सुविचारित और दूरगामी प्रयास है मूल्य संवर्धन पाठ्यक्रम। देश भर के शिक्षा वैज्ञानिकों की सहायता से तैयार इन पाठ्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य छात्रों का सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास, चरित्र निर्माण और टीम वर्क का विकास करना है।

मैकाले मॉडल की तरह ये कोरे सैद्धांतिक कोर्स नहीं होंगे, बल्कि प्राचीन भारतीय अध्ययन पद्धति या आधुनिक काल में महात्मा गाँधी के मॉडल से प्रेरित सभी पाठ्यक्रमों में प्रायोगिक अध्ययन कम से कम 50 प्रतिशत होगा। इन पाठ्यक्रमों को विज्ञान, कला और वाणिज्य आदि सभी छात्र पढ़ सकते हैं। ये पाठ्यक्रम हमारे युवाओं में सामाजिक दायित्व का बोध और सेवा का भाव भरने के साथ साथ उनमें देशप्रेम का भाव भी विकसित करेंगे।

आगामी शिक्षा-सत्र 2022-23 से ही इस महत्त्वपूर्ण दिशा में कार्य आरम्भ किया जा चुका है। अब तक विभिन्न विश्वविद्यालयों में 24 कोर्स बनाए जा चुके हैं। स्नातक कार्यक्रम के लिए लगभग सौ ऐसे कोर्स बनाए जाएंगे। वर्तमान के कुछ प्रमुख कोर्स इस प्रकार हैं- वैदिक गणित, स्वच्छ भारत, फिट इंडिया, आर्ट आफ बीइंग हैप्पी, इमोशनल इंटेलीजेंस, पंचकोश- होलिस्टिक डेवलपमेंट, भारतीय भक्ति परंपरा और मानव मूल्य, आयुर्वेद एंड न्यूट्रिशन, साइंस एंड सोसायटी, योग- फिलासफी एंड प्रैक्टिसेज, साहित्य, संस्कृति और सिनेमा, प्राचीन भारतीय परंपरा में आचार-नीति और मूल्य, कांस्टीट्यूशनल वैल्यूज एंड फंडामेंटल ड्यूटीज, डिजिटल एंपावरमेंट इत्यादि। वैदिक गणित का पाठ्यक्रम अपने ढंग का अद्वितीय कोर्स है।

यह हमारा दुर्भाग्य रहा कि गणित की अपनी प्राचीन समृद्ध विरासत को स्वाधीनता पश्चात भी हम अपने पाठ्यक्रमों में शामिल नहीं कर पाए। वैदिक गणित विद्यार्थियों की संगणन क्षमता को कई गुना बढ़ा देता है। आइआइएम में प्रवेश के लिए कैट एग्जाम की कोचिंग कराने वाले संस्थान वैदिक गणित का कौशल सिखाते हैं। यही नहीं, वैदिक गणित विद्यार्थियों के 'क्रिटिकल थिंकिंग' को भी बढ़ावा देगा और मन में भारत के प्रति गौरव व सम्मान का भाव भी भरेगी।

युवाओं में बढ़ते असंतुलन, मानसिक तनाव और आक्रामकता आदि से निपटने में 'पंचकोश-होलिस्टिक डेवलपमेंट' बहुत सहायक सिद्ध होगा। तैत्तिरीय उपनिषद में उल्लिखित 'पंचकोश' के आधार पर व्यक्तित्व व चरित्र का निर्माण युवाओं को एक नई दिशा देने का कार्य करेगा। 'योग-फिलासफी एंड प्रैक्टिसेज' पाठ्यक्रम भी आज के जटिल और तनावपूर्ण जीवन में बहुत उपयोगी सिद्ध होने वाला है। अन्य कोर्सों में भी भारतीय ज्ञान परंपरा के तत्त्वों को यथासंभव शामिल किया गया है; जैसे- 'कांस्टीट्यूशनल वैल्यूज एंड फंडामेंटल ड्यूटीज' वाले पाठ्यक्रम में सेक्युलरिज्म के साथ-साथ सर्वधर्म समभाव की अवधारणा भी जोड़ी गई है। धर्म को लेकर हमारी संवैधानिक स्थिति सेक्युलरिज्म की अवधारणा की बजाय भारतीय सर्वधर्म समभाव की अवधारणा के ज्यादा अनुरूप है।

21वीं सदी में दुनिया में परचम लहराने को तैयार युवाओं का 'नया भारत' आर्थिक रूप से तो तैयारी कर ही रहा है, लेकिन यह जरूरी है कि न्यू इंडिया संतुलित, चरित्रवान, सामाजिक दायित्व-बोध और राष्ट्रप्रेम के भाव से भी युक्त हो, तभी भारत पुनः जगद्गुरु बन पाएगा। आशा है कि वैल्यू एडिशन कोर्सेस देश के विश्वविद्यालयों के लिए इस संदर्भ में एक मॉडल होंगे। ❑

शिक्षा परिसर का आत्म-तत्त्व शिक्षक

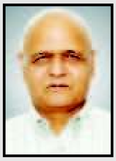

प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा
अध्यक्ष, शांति और सतत विकास के लिए, यूनेस्को महात्मा गांधी शिक्षा संस्थान (यूनेस्को-एमजीआईईपी)

देश के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी विकास में शिक्षा का स्थान सर्वोपरि होता है। विश्व के सभी समृद्ध देशों का 'शैक्षिक गुणवत्ता सूचकांक', 'नवोन्मेष सूचकांक' एवं उनमें छात्र-शिक्षक अनुपात शेष देशों से बेहतर पाया जाता है। इस प्रकार उचित छात्र - शिक्षक अनुपात से शैक्षिक गुणवत्ता, नवोन्मेष एवं समृद्धि का स्तर बेहतर किया जा सकता है। आँकड़ों के विश्लेषण से यह तथ्य सामने आता है कि विश्व के उच्च प्रति व्यक्ति आय युक्त देशों का शैक्षिक गुणवत्ता सूचकांक भी सर्वोच्च और 64 से 78.2 के बीच रहता आया है। सभी धनी देशों में शिक्षक छात्र अनुपात भी सदैव अनुकूल देखा गया है। इन देशों में प्रति 10-15 छात्रों पर एक शिक्षक उपलब्ध है। इन देशों का वैश्विक नवोन्मेष सूचकांक भी शीर्ष स्थान पर रहता आया है। भारत में प्रति 30 छात्रों पर औसत एक शिक्षक ही है। लेकिन इसमें विषमता भी बहुत ही अधिक है। अनेक संस्थानों में प्रति 100 छात्रों पर एक शिक्षक भी सुलभ नहीं हो पाता है। बहुसंख्य संस्थानों में बड़ी संख्या में आधे से अधिक शिक्षक अंशकालिक या अनुबन्ध पर कार्यरत है। नियमित शिक्षकों के अभाव में भी शिक्षा का स्तर न्यून ही पाया जाता है।

गुणवत्ता का आधार सम्यक छात्र शिक्षक अनुपात

छात्र-शिक्षक अनुपात में अनुकूलता होने पर ही शिक्षकों की शिक्षण-अभिवृति अध्यापन-सलग्नंता, उनकी, छात्रोन्मुखता एवं शिक्षण या अध्यापन अनुराग उच्च होता है। संस्थान में छात्र संख्या के सापेक्ष शिक्षक अनुपात उच्च होने पर शिक्षकों का छात्रों पर प्रेरणात्मक प्रभाव भी बेहतर पाया जाता है। शिक्षण शास्त्र के मानकों के अनुसार भी अच्छा शिक्षक वही माना जाता है जो न केवल अच्छे से अध्यापन व विवेचन करे, वरन ''छात्रों में और अधिक पढ़ने के लिये प्रेरणा जगा सके।'' देश में कालांश के आधार पर अध्यापकों को मानधन पर अनुबन्धित करना या मासिक अनुबन्ध पर नियुक्ति की परम्परा तेजी से बढ़ी है अतिथि संकाय से अध्यापन कराने के कारण शिक्षण की गुणवत्ता, छात्रों का समग्र विकास, उनकी तर्क क्षमता अन्वेषण क्षमता एवं उनके शोध की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

भारत के बाहर विश्व में ऐसे अनेक विश्वविद्यालय हैं जहाँ के 100 से अधिक छात्रों ने नोबल पुरस्कार अर्जित किए हैं। उन सभी विश्वविद्यालयों में प्रति छात्र-शिक्षक अनुपात अत्यन्त अनुकूल है। उनमें प्रति 10-15 छात्रों पर एक पूर्णकालिक शिक्षक

नियोजित है। भारत की तुलना में एक प्रतिशत से भी अल्प जनसंख्या व एक प्रतिशत से अल्प ही क्षेत्रफल वाले इजरायल जैसे देश का टेक्नियन इजरायल इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी विश्व के उन 10 शीर्ष विश्वविद्यालयों में है जिसके छात्रों संकाय सदस्यों ने 2001 से 2017 के मध्य सर्वाधिक नोबल पुरस्कार तक अर्जित किए हैं। भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में 1930 में सी.वी. रमन के बाद अभी तक कोई एक भी वैज्ञानिक वह पुरस्कार नहीं जीत पाया है। इजरायल में प्रति 12 छात्रों पर एक शिक्षक है दूसरी ओर भारत में प्रति 30 छात्रों पर एक औसत शिक्षक उपलब्ध है। भारत में नियमित शिक्षक विहीन विश्वविद्यालय भी मिल जाते हैं। उचित शिक्षक-छात्र अनुपात होने से इजरायल शैक्षिक गुणवत्ता सूचकांक में भी बारहवें स्थान पर एवं नवोन्मेष सूचकांक में 16वें स्थान पर है। भारत गुणवत्ता में 33वें व नवोन्मेष सूचकाक में 40वें स्थान पर है। यदि विश्व के चयनित प्रमुख देशों की शिक्षा के गुणवत्ता सूचकांक, उन देशों के नवोन्मेष सूचकांक और देश के प्रति व्यक्ति आय समीक्षा करें तो उसमें उचित छात्र-शिक्षक अनुपात की प्रमुख भूमिका दिखाई देती है। यह तथ्य आगामी तालिका से स्पष्ट हो जाएगी।

तालिका : शिक्षा की गुणवत्ता, नवोन्मेष एवं राष्ट्रीय समृद्धि पर छात्र शिक्षक अनुपात का प्रभाव

चयनित राष्ट्र	शिक्षा का गुणवत्ता सूचकांक	वैश्विक नवान्मेष सूचकांक में क्रम	राष्ट्र की प्रति व्यक्ति आय (डॉलर में)	छात्र शिक्षक अनुपात
इंग्लैण्ड	78.2	4	47,318	15.13
अमेरिका	72	2	75,180	14.2
ऑस्ट्रेलिया	70.5	25	66,408	17.88 (1999)
नीदरलैंड्स	70.3	5	56,298	11.8
स्वीडन	70.1	3	56,361	12.23
फ्रांस	69.9	12	42,330	18.18
डेनमार्क	69.8	10	65,713	10.74
कनाडा	69.8	15	56,794	17.42
जर्मनी	69.5	8	48,398	12.30
स्विट्जरलैंड	69.3	1	92,434	9.93
जापान	68.2	13	34,358	15.66
इजरायल	66.9	16	55,359	12.07
फ़िनलैंड	66.8	9	50,818	13.67
ताईवान	66.6		35,513	19.83
सिंगापुर	66	7	79,426	14.69
द. कोरिया	65.2	6	33,592	16.29
नार्वे	65	22	92,646	8.59
बेल्जियम	64.2	25	50,598	11.28
संयुक्त अरब अमीरात	64.0	31	47,793	24.52
भारत	59.1 (33वां स्थान)	40	2466 (139वां स्थान)	32.75 (153वां स्थान)

तालिका से विदित होता है और अनेक अन्य वैश्विक अनुसन्धानों से भी यह तथ्य निर्विवादत: सामने आया है कि जिन संस्थानों व राष्ट्रों में प्रति 15 से न्यून संख्या में छात्रों पर एक शिक्षक है, वहाँ का शैक्षिक गुणवत्ता सूचकांक व नवोन्मेष सूचकांक बेहतर है। समृद्धि की दृष्टि से विचार करे तब भी शिक्षा के 'वैश्विक गुणवता सूचकांक' व 'नवोन्मेष सूचकांक' के बेहतर होने से उन देशों की प्रति व्यक्ति आय भी भारत की प्रति व्यक्ति आय के दस गुने से भी अधिक है। इस वरीयता के कई और सम-पाश्विक कारण व आधार भी हैं। लेकिन, बेहतर छात्रशिक्षक अनुपात एवं शिक्षकों की उच्चतर अध्यापन अभिवृत्ति होना किसी भी देश की समृद्धि के प्रमुख कारणों में है।

अनुबन्धित एवं अतिथि संकाय पर बढ़ती निर्भरता

देश में पूर्व अधिकांश संस्थानों में शिक्षक नियमित वेतनमान पर स्थाई रूप से नियुक्त किए जाते रहे हैं। 90 के दशक से ही नियमित आधार पर संकाय सदस्यों की

नियुक्ति के स्थान पर अतिथि संकाय (गेस्ट फेकल्टी), समेकित वेतन पर अर्थात् व निर्धारित वेतनमान से अति अल्प वेतन पर या प्रति कालांश की दर से नियुक्त किए जाने लगे हैं। काम चलाऊ शिक्षकों के माध्यम से अध्यापन की प्रवृति शासकीय संस्थानों में इतनी उच्च है कि देश के बहुसंख्य विश्वविद्यालयों में विहित संख्या के आधे से भी अल्प संख्या में स्थाई शिक्षक सुलभ हैं। प्राध्यापक रहित शासकीय विश्वविद्यालय तक भी कार्यरत हैं। विश्वविद्यालयों के अनेक विभाग सर्वथा नियमित संकाय सदस्य रहित होना सामान्य बात है और एक या दो नियमित प्राध्यापक के माध्यम से चार-पाँच तक पाठ्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। अनेक शासकीय विश्वविद्यालयों में नाम मात्र के होते नियमित प्राध्यापकों और उनसे कहीं अधिक अतिथि प्राध्यापकों से नये नये बैचों के संचालन का चलन बहुत तेजी से बढ़ रहा है। सम्बद्धता प्रदान करने हेतु इन्हीं विश्वविद्यालयों द्वारा सम्बद्धता की शर्तों में 15:1 के छात्र-शिक्षक अनुपात रखे जाने एवं कुल संकाय सदस्यों में प्रोफेसर, एसोसिएट प्रोफसर व असिस्टेंट प्रोफसेर का केडर अनुपात रखने की शर्त आरोपित की जाती है। लेकिन ये ही सम्बद्धता प्रदान करने वाले विश्वविद्यालय स्वयं अपने संघटक महाविद्यालयों, विभागों आदि में कई मामलों में नियमित संकाय सदस्यों की नियुक्ति ही नहीं करते हैं अथवा करते भी हैं तो छात्रों के अनुपात में नियमित शिक्षक नियुक्त ही नहीं करते हैं और न ही केडर अनुपात संधारित करते हैं।

शिक्षा की गुणवता, नवोन्मेष, शिक्षकों की शैक्षिक-अभिवृति और शिक्षण-संलग्नता आदि की दृष्टि से वे ही शैक्षिक परिसर दीर्घावधि में बेहतर परिणाम दे सकते हैं, जहाँ छात्र-शिक्षक अनुपात बेहतर हो, शिक्षक नियमित वेतनमान पर स्थाई रूप से नियुक्त हों और यथोचित सामाजिक सुरक्षा के आश्वासनपूर्वक नियोजित होंगे। तीस वर्ष पूर्व स्थाई संस्था प्रधान रहित शिक्षण संस्थान, अपर्याप्त शिक्षक युक्त परिसर अथवा अनुबन्धित व अतिथि संकाय भरोसे चलने वाले परिसर कल्पना से ही परे थे।

निष्कर्ष

शिक्षा की गुणवता, नवोन्मेष, शिक्षकों की शैक्षिक-अभिवृति और शिक्षण-संलग्नता आदि की दृष्टि से वे ही शैक्षिक परिसर दीर्घावधि में बेहतर परिणाम दे सकते हैं, जहाँ छात्र-शिक्षक अनुपात बेहतर हो, शिक्षक नियमित वेतनमान पर स्थाई रूप से नियुक्त हों और यथोचित सामाजिक सुरक्षा के आश्वासनपूर्वक नियोजित होंगे। तीस वर्ष पूर्व स्थाई संस्था प्रधान रहित शिक्षण संस्थान, अपर्याप्त शिक्षक युक्त परिसर अथवा अनुबन्धित व अतिथि संकाय भरोसे चलने वाले परिसर कल्पना से ही परे थे। अब अधिकांश शासकीय संस्थानों (विद्यालयों व उच्च शिक्षा संस्थान दोनों) में अपर्याप्त शिक्षकों व स्थाई संस्था प्रधान रहित संस्थानों के चलते, सम्पूर्ण शैक्षिक तंत्र ही निष्प्राण सा लगता है। स्ववित्त पोषित संस्थानों द्वारा स्पर्द्धावश बेहतर शिक्षक अनुपात धारित किए जाने पर वहाँ भी स्थाई नियुक्तियों की प्रवृत्ति प्रभावित हो रही है। राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि कई प्रदेशों द्वारा गैर सरकारी संस्थानों का अनुदान बन्द कर देने से वहाँ भी पूर्व-अनुदान प्राप्तकर्ता संस्थानों पर भारी प्रतिकूल प्रभाव हुआ है।

अतएव विद्यालयीन व उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण की गुणवत्ता व अनुसन्धानों की प्रामाणिकता हेतु शिक्षकों की सम्यक व स्थाई नियुक्ति पर नियोजन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। देश में स्थाई नियमित शिक्षकों के अनुपात में ही अनुभाग या सेक्शन या बेच खोलने का अनुमोदन दिया जाने पर ही शिक्षा व नवोन्मेष में गुणवत्ता लाई जा सकेगी। सत्र के किसी भाग में शिक्षक संख्या घटने पर ही अतिथि संकाय या अनुबन्धित संकाय से अध्यापन का अनुमोदन दिया जाना चाहिये। अतिथि या अनुबन्धित संकाय के आधार पर नवीन विषय, नवीन अनुभाग व नवीन बैच खोले जाने पर प्रभावी रोक व नियमन आवश्यक है। ❑

समग्र शिक्षा के आधार

डॉ. शंभु दयाल अग्रवाल 'सच्चिदानंद'

पूर्व अध्यक्ष, हिंदी एवं अनुवाद संकाय, ओड़िशा राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, सम्बलपुर (ओड़िशा)

आज 'समग्र शिक्षा' की बड़ी चर्चा है; यानी ऐसी शिक्षा, जिससे शिक्षित युवा के हाथ में आजीविका के कई विकल्प हों, विविध क्षेत्रों में नौकरी की योग्यता, आत्म-नियुक्ति, कृषि, उद्योग-धंधे, मत्स्य व पशुपालन आदि कुछ भी... वह एक नहीं तो दूसरे विकल्प पर अपनी किस्मत आजमा सके। अकादमिक पक्ष के अलावा विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास इसका ध्येय है। 'समग्र' शब्द से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें वे सारे तत्त्व समाहित हैं, जो व्यक्ति को एक शांत, समृद्ध, सुखी और निरामय जीवन जीने के लिए आवश्यक हैं। व्यक्ति में आजीविका-कौशल और संसाधन जुटाने की क्षमता हो, शरीर स्वस्थ व निरोगी हो; साथ ही वह एक उत्तम नागरिक भी हो; यूं कहें कि देश के हर बच्चे को भौतिकवादी दृष्टिकोण के बजाय प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक चेतना से सराबोर करने का प्रयास 'समग्र शिक्षा' का ध्येय है।

समग्र शिक्षा ही की दृष्टि से भारत सरकार ने देश को नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की सौगात दी है जो स्नातक उपाधि हासिल करने तक देश के युवा को सर्वगुण सम्पन्न बनाने का सपना संजोए है। शिक्षा व्यवस्था में ज्ञान के लिए विविध विषयों की अकादमिक शिक्षा, जीविकोपार्जन कौशल के लिए कारीगरी व तकनीकी प्रशिक्षण, उत्तम स्वास्थ्य के लिए खेलकूद, योग-व्यायाम, मानसिक स्वास्थ्य के लिए नृत्य-संगीत-नाटक, चित्रकला आदि के साथ साथ उत्तम चरित्र निर्माण के लिए विविध उपायों का समावेश है। इसमें तैराकी, पर्वतारोहण, घुड़सवारी जैसी अन्य गतिविधियाँ भी शामिल हैं; वह सब कुछ जो प्रबंधन छात्रों के लिए व्यवस्था कर सकता है। विद्यार्थी अपनी रुचि अनुसार इनमें से चुन सकता है। पर केवल नीतिगत रूप में व्यवस्था कर देने भर से ही लक्ष्य हासिल नहीं होगा; उसका समुचित कार्यान्वयन भी चाहिए। कार्यान्वयन प्रबन्धकों और शिक्षकों के माध्यम से ही होगा, और उसके लिए उपयुक्त शिक्षा परिसर व आवश्यक संसाधन भी चाहिए। समग्र शिक्षा के स्वप्न को साकार करने के लिए प्रबंधन-प्रशासन, शिक्षक, विद्यार्थी सबका साथ होना ज़रूरी है, क्योंकि ये सभी आपस में ओतप्रोत संश्लिष्ट हैं।

सह-पाठ्यचर्या गतिविधियों, विशेष रूप से खेल-कूद की मात्रा के बारे में कोई बड़ा निर्णय लेने से पहले समग्र शिक्षा की अवधारणा को ठीक से समझना चाहिए। उत्तम स्वास्थ्य के लिए खेलने और आजीविका के लिए खेल प्रशिक्षण में बड़ा अंतर है। ऐसा न हो कि छात्रों के अध्ययन-काल का एक बड़ा हिस्सा कहीं और लग जाए और वे शिक्षा में अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल हो जाएँ। अत्यधिक खेलकूद व अन्य गतिविधियों से पढ़ाई में छात्रों की रुचि और दूरगामी लक्ष्य बाधित होता है। अकादमिक ज्ञान

भी बहुत जरूरी है, क्योंकि आज भी हम अधिकांश बच्चों के लिए खेल को आजीविका बनाने का सपना नहीं देख सकते। यह निर्विवाद सत्य है कि राष्ट्रीय स्तर पर खेलों में अपना करियर बनाने वाले गिने-चुने लोग ही हैं। खिलाड़ियों के लिए उपलब्ध स्कूलों, कार्यालयों आदि में रोजगार के अवसर स्कूल पाठ्यक्रम के अन्य विषयों के अतिरिक्त ज्ञान की अपेक्षा रखते हैं। बहरहाल, उनका भविष्य अध्ययन सामग्री के अच्छे ज्ञान में निहित है जो डॉक्टर, इंजीनियर, कंप्यूटर कर्मी, प्रबंधक, नौकरशाह, वकील-न्यायाधीश, वैज्ञानिक, लिपिक-लेखाकार आदि जैसे रोजगार के कई रास्ते खोलता है। इसलिए बच्चा किसी खेल प्रतियोगिता में अनुत्तीर्ण हो तो माता-पिता को उतना दु:ख नहीं होता जितना कि शैक्षणिक परीक्षा में विफल होने पर होता है। अत: छात्र और स्कूल के उज्ज्वल भविष्य के लिए शैक्षणिक व अन्य तकनीकी पाठ्यक्रमों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

'समग्र शिक्षा' थाली में परोसे गए संतुलित आहार जैसी है; जिसमें श्वेतसार यानी कार्बोहाइड्रेट प्रमुख होता है, उसके बाद पुष्टिसार (प्रोटीन), वसा (फेटस्), खाद्यप्राण (विटामिन) और खनिज (मिनिरल्स) आते हैं; अर्थात् हम थाली में परोसे गए चावल, दाल, सब्जियाँ, फल और घी आदि की मात्रा की कल्पना कर सकते हैं। शिक्षा के मामले में हम चावल या रोटी की तुलना भाषा, सामाजिक अध्ययन आदि जैसे मानविकी विषयों से कर सकते हैं, जो मानव समाज में हमारे अस्तित्व के लिए सर्वाधिक आवश्यक है। इसके बाद विज्ञान और गणित आते हैं, जो जीवन में 'प्रोटीन' जोड़कर हमारी मानसिक क्षमताओं और आजीविका कमाने की ताकत का पोषण करते हैं। इसके अलावा ललित कलाएँ, मूर्तिकला, नाटक, नृत्य- संगीत हमारे जीवन में स्वाद जोड़ते हैं। इसकी मात्रा संतुलित आहार में शामिल घी जितनी होनी चाहिए। खेल भी नृत्य-संगीत जैसी पाठ्येतर गतिविधियों का एक हिस्सा हैं। अतिरिक्त पाठ्यचर्याओं की इन सभी गतिविधियों की कुल मात्रा संतुलित आहार में परोसी गई सब्जी, सलाद और घी के अनुपात में होना चाहिए।

उपनिषदों के पाँच महत्त्वपूर्ण वचनों में से एक है- 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।' शरीर सारे कर्तव्य निभाने का एकमात्र साधन है; इसे व्यायाम द्वारा स्वस्थ रखना है। खेल शरीर को मजबूत करने का अच्छा साधन है, इसमें बहुत मज़ा भी आता है। योग और जिम्नास्टिक इसे लचीला बनाने के अलावा मन की एकाग्रता में सुधार करते हैं। इसके अलावा, अच्छे स्वास्थ्य के लिए बच्चे जूड़ो, कराटे, लाठी, कुश्ती, मुक्केबाजी आदि जैसे मार्शल आर्ट सीख सकते हैं; इन गतिविधियों से उन्हें आत्मरक्षा के उपायों से प्रशिक्षित किया जा सकता है। टीम वर्क होने के कारण खेलकूद से उनमें सहयोग की भावना पनपती है।

उपयोगिता के आधार पर खेलों का चयन करें। कबड्डी में मज़ा, अधिक शारीरिक व्यायाम और किसी घुसपैठिए को पकड़ने या भीड़ से बचने की कला है। फुटबॉल, हॉकी आदि के लिए बड़ा मैदान न होने पर छोटी-सी जगह में वॉलीबॉल खेल सकते हैं। पर क्रिकेट सभी प्रतिभागियों के लिए अच्छे व्यायाम के बजाय एक धूमधाम वाला शो है।

जो विद्या मिली है, वह हमें कमाने लायक बनाए। लेकिन विद्यार्जन का यही एकमात्र उद्देश्य नहीं। नीतिवान शिक्षा के अभाव में न स्त्री मधुरभाषिणी या प्रिया होगी, और न संतानें आज्ञाकारी! चोरी भी एक विद्या है; अच्छी आमदनी होती है! पर चोरी विद्या सिखाने को कोई प्रशिक्षण-केंद्र नहीं खोलता; क्योंकि यह स्वस्थ समाज के विपरीत है। शिक्षा इस तरह की विद्या को प्रोत्साहित नहीं करती। गलत काम होने पर भी चोरी एक विद्या है, पर गलत बात सिखाने पर उसे शिक्षा नहीं, कुशिक्षा कहते हैं। शिक्षा और विद्या में यही अंतर है। इसलिए चरित्र निर्माण 'अर्थकरी विद्या' से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

पाठ्य-विषयों व पाठ्येतर गतिविधियों में बच्चों की रुचि अलग-अलग होती है। कुछ बच्चे कोलाहल के बजाय शांत वातावरण पसंद करते हैं। खेलकूद में रुचि न रखने वाले अध्ययनशील छात्र योग-प्राणायाम के अनिवार्य प्रशिक्षण के साथ संगीत, नृत्य या ललित कलाओं में से एक चुन सकते हैं। यदि स्कूल परिसर में स्विमिंग-पूल हो तो छात्र खेल के बजाय तैराकी का विकल्प भी चुन सकते हैं, क्योंकि इसमें नृत्य की तरह शरीर की सर्वांग-कसरत है।

शिक्षा में उत्कृष्टता के लिए हमें स्कूल में अध्ययन का उत्कृष्ट माहौल बनाना होगा। खेल रहे छात्र किसी कक्षा में हो रही पढ़ाई से परेशान नहीं होते, जबकि कक्षा में पढ़ रहे विद्यार्थी-शिक्षक को किसी सभागार या खेल आयोजन के शोर से परेशानी होती है। वातावरण अनुकूल न हो तो दैनिक कार्य-सूची में विभिन्न विषयों के लिए कक्षाएँ आवंटित करने का कोई मतलब नहीं। बंद कमरे में होने वाले खेलकूद, नाटक, नृत्य और संगीत के अभ्यास-कक्ष ऐसी जगह हों, जिससे शोरगुल अध्ययन व योग-प्राणायाम कक्षों तक न पहुँचे। इसके लिए विद्यालय भवन गोलाकार नहीं होना चाहिए।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार व्यक्ति के शरीर के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य भी ज़रूरी है। मानसिक पीड़ा से वशीभूत व्यक्ति को 'स्वस्थ' नहीं कह सकते; ऐसे व्यक्ति से काम करते हुए गलतियाँ होंगी। कठोर व्यवहार व्यक्ति को अहंकारी बनाता है, विरोध की प्रवृत्ति जगाता है। यह अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षण-

प्रशिक्षण को प्रभावित करेगा; शिक्षक-विद्यार्थी के कर्तव्यों की नियमित पूर्ति में लापरवाही होगी। छात्र शिक्षायतन के प्रमुख कारक और शिक्षक रीढ़ की हड्डी होते हैं। शिक्षक अच्छी तरह से तभी पढ़ा सकेगा जब उसका शरीर और दिमाग स्वस्थ हो; वैसे ही दिमाग शांत और पाठ में रुचि होने पर ही विद्यार्थी उसे आत्मसात कर सकता है। प्रबंधन शिक्षकों को या शिक्षक छात्रों को डाँटने से कोई लाभ नहीं होने वाला। शांत परिवेश ही व्यक्ति, जाति, देश या समाज के विकाश की पूर्व-शर्त है। इसमें प्रबंधन की ज़िम्मेदारी सर्वाधिक है।

उत्तम नागरिक-निर्माण 'समग्र शिक्षा' का चरम लक्ष्य है जोकि अच्छे चरित्र के बिना संभव नहीं। हितोपदेश (0.25) का एक लोकप्रिय श्लोक है-

आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

इन्सान और जानवर दोनों खाते हैं, सोते हैं, डरते और मैथुन भी करते हैं। मनुष्य में निहित धर्मभाव उसे पशु से अलग करता है; क्योंकि पशुओं में ऐसा दिखाई नहीं देता। इसलिए धर्मविहीन व्यक्ति पशुतुल्य है। यहाँ पहले हम 'धर्म' को समझें। मनुस्मृति (6.92) में कहा गया है-

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं,
शौचं इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यं अक्रोधो,
दशकं धर्मलक्षणम्॥

अर्थात् धर्म के दस लक्षण हैं- धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, स्वच्छता, इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध-धर्म के ये दस लक्षण हैं। यानी 'धर्म' का पूजा-पाठ, होम-यज्ञ, तीर्थयात्रा, पशुबलि या नमाज़ आदि से कोई लेना देना नहीं। विवेकानुसार काम करना ही धर्म है। अतः शिक्षा का मौलिक उद्देश्य बच्चे को एक अच्छा इंसान बनाना और उसमें उदात्त गुणों के बीज बोना है।

समान अर्थ में प्रयुक्त होने के बावजूद विद्या और शिक्षा के बीच एक सूक्ष्म अंतर है। विद्या जीविकोपार्जन का माध्यम है जबकि चरित्र निर्माण शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य। बढ़ई, मिस्त्री, लोहार, सुनार, स्थापत्य, तीरंदाजी, मत्स्य-पालन, कृषि जैसे भौतिक कौशल वाले व्यवसाय एक-एक विद्या हैं। एक अनपढ़ व्यक्ति भी किसी विद्या में पारंगत हो सकता है। लेकिन ज्योतिर्विद्या, ज्ञान-विज्ञान या कविता जैसे कार्यों के लिए भाषा और लिपि का सम्यक ज्ञान चाहिए। दोनों ही मामलों में चरित्र-शिक्षा जरूरी है। चरित्रवान अनपढ़ व्यक्ति किसी विद्या के सहारे अपने परिवार का प्रतिपालन करते हुए समाज का विकास कर सकता है; पर नीति-विहीन विद्या विनाश का कारण बन सकती है। महात्मा विदुर ने कहा है-

अर्थागामो नित्यमरोगिता च,
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या,
षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।

रोज़ धन आए, निरोगी शरीर, प्रेम करने वाली मधुरभाषिणी पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र और रोजगारक्षम विद्या में निपुणता-संसार के ये छः सुख हैं।

जो विद्या मिली है, वह हमें कमाने लायक बनाए। लेकिन विद्यार्जन का यही एकमात्र उद्देश्य नहीं। नीतिवान शिक्षा के अभाव में न स्त्री मधुरभाषिणी या प्रिया होगी, और न संतानें आज्ञाकारी! चोरी भी एक विद्या है; अच्छी आमदनी होती है! पर चोरी विद्या सिखाने को कोई प्रशिक्षण-केंद्र नहीं खोलता; क्योंकि यह स्वस्थ समाज के विपरीत है। शिक्षा इस तरह की विद्या को प्रोत्साहित नहीं करती। गलत काम होने पर भी चोरी एक विद्या है, पर गलत बात सिखाने पर उसे शिक्षा नहीं, कुशिक्षा कहते हैं। शिक्षा और विद्या में यही अंतर है। इसलिए चरित्र निर्माण 'अर्थकरी विद्या' से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिए बच्चों को प्राचीन शास्त्रों से उपादेय कहानियों और प्रसंगों को पढ़ाया जाए। नई 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में उनके पूरे साल के व्यवहार की जाँच करने की व्यवस्था है। फलस्वरूप विद्यार्थी मजबूरन अच्छे व्यवहार का अभ्यास करेंगे। ऐसा करने से मैट्रिक पास करने तक खराब रवैये वाला बच्चा भी काफी बदलेगा।

अंततः एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष पर भी ध्यान दें। हरियाली और जलस्रोत देखने पर मन शांत और एकाग्र होता है। ऊँचे दरख्त शब्द व वायु-प्रदूषण को रोकते हैं। इसलिए शिक्षायतनों में व्यापक वृक्षरोपण, फब्बारों युक्त सुरम्य बगीचों का निर्माण अध्ययन अध्यापन हेतु एक शांत सकारात्मक परिवेश प्रदान करेगा; इस दिशा में प्रबंधक अवश्य ध्यान दें। ❑

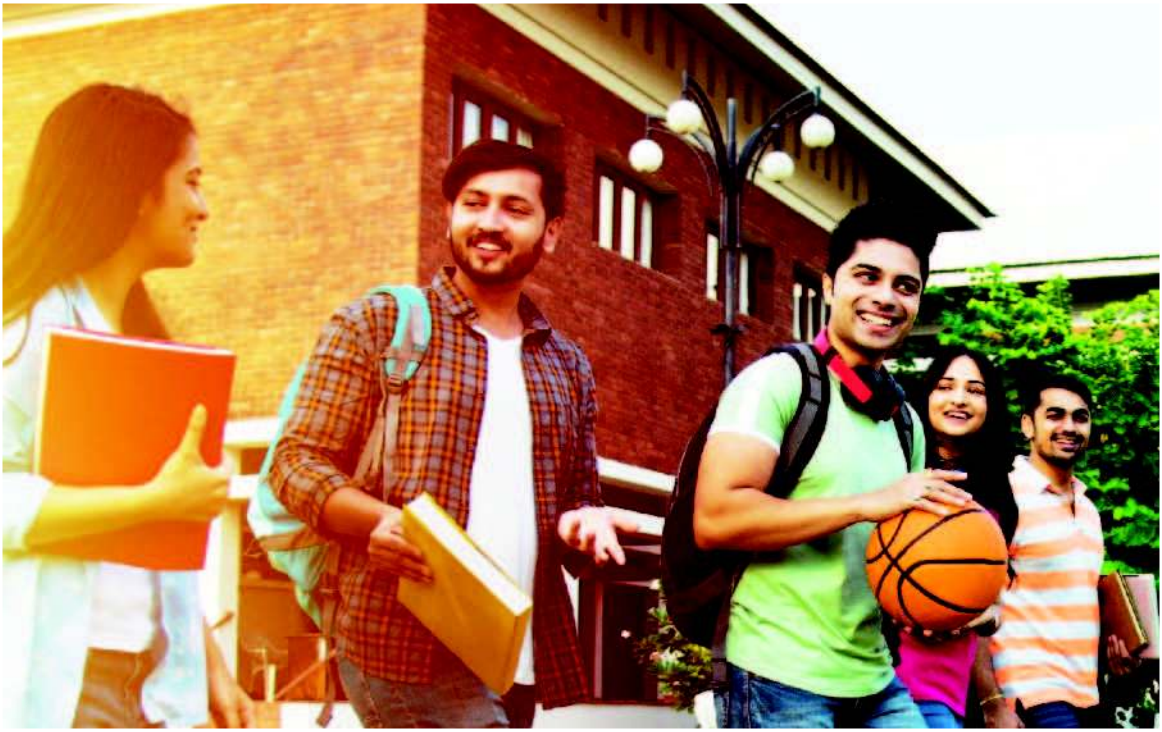

शिक्षा परिसर और विद्यार्थी व्यवहार

डॉ. यदु शर्मा
प्राचार्या,
एस. एस. जैन सुबोध
टी. टी. कॉलेज,
जयपुर (राज.)

किसी भी राष्ट्र के विकास व प्रगति का आधार उस देश की मानवीय सम्पदा है। भारत में मानवीय सम्पदा के अकूत भंडार हैं। भारत को पुन: विश्व गुरु के रूप में प्रतिस्थापित करने के लिए हमारे द्वारा मानवीय सम्पदा के महत्त्वपूर्ण घटक बालकों को सभ्य व संस्कारवान बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। इस कार्य के लिए शिक्षा ही एक सशक्त माध्यम है। विद्यार्थी में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक, चारित्रिक व आध्यात्मिक गुणों को विकसित कर उन्हें समाज उपयोगी इकाई बनाने में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

विद्यालय वातावरण व बालकों का शारीरिक विकास–बालकों के सर्वांगीण विकास की प्रथम प्रयोगशाला विद्यालय है जहाँ बालकों के शारीरिक विकास के लिए खेल के मैदान उसे अपनी अंतर्निहित शारीरिक शक्तियों को विकसित करने हेतु प्रेरणा प्रदान करते हैं। समय- समय पर विद्यालय में आयोजित होने वाली प्रतियोगितओं के आयोजन का उद्देश्य विद्यार्थियों में शारीरिक गतिविधियों के माध्यम से स्वयं के शरीर को स्वच्छ और सुन्दर बनाने का प्रयास होता है। यह शिक्षा ही इनके समाजीकरण की प्रक्रिया को समन्वय एवं संतुलन के साथ पूर्ण व विकसित करने में अपना योगदान देती है। स्वस्थ शरीर में ही सद्‌गुणों का विकास होता है। विद्यार्थियों के शारीरिक विकास का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव उनके मानसिक विकास पर भी निर्णय लेने, विश्लेषण करने, विवेचन करने, भविष्यवाणी करने व निष्कर्ष निकालने की मानसिक प्रतिभाओं का सही ढंग से विकास होता है। व्यक्तित्व विकास के ये दोनों पक्ष मिलकर बालक के सामाजिक सांवेगिक पक्षों को भी पुष्ट करते हैं। धीरे-धीरे बालक अपनी इच्छाओं व इन्द्रियों को नियंत्रित एवं संयमित कर पाने में सक्षम होता है। अच्छी एवं स्वस्थ आदतों का निर्माण का बालक अपनी सृजनात्मक रचनात्मक सोच के माध्यम से शब्द निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे पाने में समृद्ध होता है।

वर्तमान समय में समाज में जो बाल अपराध बढ़ रहे हैं उसका भी महत्त्वपूर्ण कारण शिक्षा परिसर में नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षा का अभाव है हमें विद्यालय परिसर में महापुरुषों की

जीवनी, प्रेरक प्रसंग, बालसभा आदि के आयोजन के माध्यम से बालकों को संस्कारित करने का प्रयास करना चाहिए। इन आयोजनों से बालकों को अपनी अंतर्निहित शक्तियों को प्रस्फुटित करने का अवसर मिलता है साथ ही साथ वह अपने जीवन में इन महापुरुषों के आचरण एवं शिक्षा को भी ढालने का प्रयास करता है। सुंदर सभ्य समाज के निर्माण हेतु चरित्रवान नागरिकों का होना अनिवार्य ही नहीं वरन आवश्यक भी है। जीवन को समाजोपयोगी बनाने में जीवन मूल्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। ये जीवन मूल्य ही व्यक्ति के चरित्र निर्माण में भूमिका निभाते हैं।

व्यक्तियों में प्रेम, त्याग, दया, करुणा, परस्पर सहयोग सहकारिता एवं समन्वय का भाव पैदा कर उसके जीवन को दुर्गुणों से बचने में महती भूमिका निभाते हैं। विद्यालय परिसर बालक की बुद्धि व विवेक का विकास करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। यहाँ सैद्धान्तिक ज्ञान को व्यावहारिक एवं क्रियात्मक बनाने में बालक के समक्ष समुचित परिस्थिति पैदा होती है। ऐसे में विषम परिस्थितियों में भी वह अपनी बुद्धि एवं विवेक का उपयोग कर विवेकपूर्ण एवं बुद्धिमत्ता पूर्वक कार्य कर एक विवेकपूर्ण एवं जिम्मेदार नागरिक बन पाने में सक्षम होता है।

विद्यालय परिसर बालकों के चरित्र निर्माण में सांस्कृतिक मूल्यों का हस्तांतरण करने में भी सहयोगी भूमिका निभाते हैं। विद्यालय में होने वाले रचनात्मक एवं सृजनात्मक कार्यो द्वारा सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण के मानसिक सौन्दर्यात्मक तथा धार्मिक पक्षों के विकास से बालकों को चरित्रवान बनाने में सहायक होता है। शिक्षा परिसर में दी जाने वाली शिक्षा बालक को इस योग्य बनाती है कि वह अपनी संस्कृति की सहायता से आध्यात्मिक जगत में अधिक पूर्णता सहित प्रवेश कर सके तथा आध्यात्मिक जगत का विस्तार कर समुचित व्यक्तित्व का विकास कर सके।

प्लेटो के अनुसार विद्यालय परिसर में बालकों में नैतिक गुणों का विकास करने से बालकों की नैसर्गिक इच्छाओं को अच्छी आदतों में परिवर्तित करने से बालकों में सद्गुणों का विकास होता है जो उन्हें वातावरण एवं परिस्थिति के अनुसार सामंजस्य स्थापित करने में सहायक होता है।

प्रकृतिवादी रूसो का भी यह मानना था कि विद्यालय का नैसर्गिक वातावरण बालकों में स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व भावना विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं क्योंकि वहाँ बालक समाजीकरण की प्रक्रिया में विभिन्न वैयक्तिक विभेदों के साथ क्रिया करना सीखते हैं जो उनको सभ्य एवं सुसंस्कृत नागरिक बनाने में विशेष योगदान देता है।

वर्तमान समय में समाज में जो बाल अपराध बढ़ रहे हैं उसका भी महत्त्वपूर्ण कारण शिक्षा परिसर में नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षा का अभाव है हमें विद्यालय परिसर में महापुरुषों की जीवनी, प्रेरक प्रसंग, बालसभा आदि का आयोजन के माध्यम से बालकों को संस्कारित करने का प्रयास करना। इन आयोजनों से बालकों को अपनी अंतर्निहित शक्तियों को प्रस्फुटित करने का अवसर मिलता है साथ ही साथ वह अपने जीवन में इन महापुरुषों के आचरण एवं शिक्षा को भी ढालने का प्रयास करता है।

विद्यालय परिसर में मनोवैज्ञानिक आधार पर बालक को स्वयं को समझने का भी समुचित अवसर प्राप्त होता है। जिस कारण वह अपनी रुचि, योग्यता, अभिक्षमता व अभिवृद्धि के अनुरूप कार्य एवं व्यवहार करने हेतु प्रेरित होता है जो उसे जीवन में तनाव, दबाव, भग्नाशा जैसी मानसिक विकृतियों से दूर रखकर एक स्वस्थ मानसिक सोच के आधार पर क्रिया करने हेतु प्रेरित करता है।

विद्यालय परिसर के सन्दर्भ में जॉन डी.वी. की प्रोग्रेसिव स्कूल की संकल्पना भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जॉन डी.वी. ने विद्यालय परिसर में केवल पुस्तकीय ज्ञान का विरोध करते हुए विद्यालयों को एक सामाजिक संस्था के रूप में विकसित किए जाने पर बल दिया जहाँ पर बालक सामूहिक जीवन के द्वारा वास्तविक अनुभव प्राप्त कर पाने में सक्षम होता है। डी.वी. के अनुसार विद्यालय परिसर वह स्थान है जहाँ पर उनके चरित्र संबंधी उन अनेक गुणों का विकास होता है जो इसे आगे चल कर समाज की जिम्मेदारियों को पूर्ण करने में योगदान देता है। डी.वी. के अनुसार बालक के चरित्र निर्माण में विद्यालय को समय एवं परिस्थिति के अनुसार अपने विद्यालयी वातावरण में परिवर्तन करने के लिए उन्मुख होना चाहिए। स्कूल में विद्यार्थियों को दी जाने वाली शिक्षा पुस्तकीय ज्ञान की बजाए जीवन–व्यवहार की शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वह आगे चलकर व्यावहारिक जीवन में प्रवेश करते हुए सभ्य नागरिक की तरह जीवन यापन कर सके। विद्यालयों को समाज का सच्चा प्रतिनिधि होना चाहिए अर्थात सभ्य सामाजिक जीवन की आधारशिला के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देना चाहिए। ❑

शिक्षा परिसरों के पर्यावरण से हो चरित्र निर्माण

डॉ. ओम प्रकाश पारीक
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, एस.आर. के. पाटनी राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, किशनगढ़, अजमेर (राज.)

शिक्षा परिसर विद्या की देवी सरस्वती के मन्दिर होते हैं अत: उन्हें उतनी ही भव्यता और सात्विकता से परिपूर्ण होना चाहिए। शोध से पता चला है कि नालन्दा विश्वविद्यालय लगभग 1 मील लम्बा और आधा मील चौड़ा था यहाँ विशाल सभागार एवं व्याख्यान कक्ष, 300 छोटे कक्ष विद्यमान थे। इसके साथ ही सुन्दर जलाशय और इस विश्वविद्यालय को चारों ओर से सुरक्षित करती घेरती प्राचीर भी थी, भवन बहुत सी मंजिलों में थे तथा ऊपर शिखर लगे हुए थे। इतना होते हुये भी भव्यता के साथ विद्यार्थियों के श्रम एवं सादगी के लिये वहाँ पूरा स्थान था।

वस्तुत: विषय शिक्षण एवं अधिगम पर शिक्षा परिसर एवं वहाँ के पर्यावरण का अच्छा एवं बुरा दोनों प्रभाव पड़ते हैं। शिक्षा व्यवस्था के भवन एवं स्थापत्य और मशीनीकरण उसका शरीर है तो उसमें बसने वाली शिक्षा उसकी आत्मा है। यह बहुत कुछ देह और आत्मा के सम्बन्ध की भांति है। यदि देह सुदृढ़ और स्वस्थ होगी तो आत्मा भी पूर्ण प्रसन्न और विकसित होगी। अत: शिक्षा के देह स्वरूप परिसर उन्नत, सुरक्षित एवं स्वस्थ पर्यावरण से युक्त होंगे तो उनमें दी जाने वाली शिक्षा भी जीवन को सार्थक करने वाली होगी। इसलिए गुरुकुलों में इन सब बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। बालक अपने शैक्षिक परिसर एवं पर्यावरण के प्रति सहज और सानन्द रहें इसके लिए उस समय भी अध्ययन के स्थान, पर्यावरण, प्रायोगिक विषयों के अध्ययन स्थान, अध्ययन क्षेत्रों के सर्वे एवं सूचना संग्रहण की परिसर में व्यवस्था का भी ध्यान रखा जाता था।

नालन्दा में बड़े भवनों को संधाराम कहा जाता था। ऐसे ही संधाराम छात्रावासों के लिए काम लिए जाते थे। एक इस प्रकार का संधाराम होता था जहाँ एक ही छात्र रह सकता था। दूसरे प्रकार के कक्ष में दो छात्र भी रह सकते थे। वहाँ रहने और सोने की व्यवस्था पढ़ने की चौकी तथा दीपक स्तम्भ भी लगा रहता था, बाहर एक कूप के पास पानी का स्थान होता था जहाँ पानी पी सकते थे। साथ ही बड़े-बड़े आगारों में सामुहिक भोजन व्यवस्था की जाती थी जिसके पास आज भी भग्न चूल्हे देखने को मिलते हैं।

प्राचीन शैक्षणिक परिसरों की इस प्रकार की व्यवस्था से यह भी ज्ञात हो जाता है कि ये शिक्षा केन्द्र औचित्यपरक शैक्षणिक सुविधाओं को लिए हुए थे जिसमें सुविधाएँ विद्यार्थी की सादगी

आज के हमारे शैक्षणिक परिसर इस प्रकार का शैक्षणिक पर्यावरण छात्रों के लिए उपस्थित करें जो कि युगीन समस्याओं के समाधान की शिक्षा तो दे हीं साथ ही छात्रों में नैतिक मूल्य और राष्ट्र गौरव की भावना का विकास भी कर सकें। वे छात्रों की नैसर्गिक क्षमताओं को प्रस्फुटित होने के लिए समुचित सुविधा और आत्मीय देखरेख की व्यवस्था सुनिश्चित भी करें तभी ऐसे गुणों को छात्रों में आत्मसात् करवाते हुये शैक्षणिक परिसर आदर्श शैक्षणिक परिसर के रूप में स्थान प्राप्त करने में सक्षम होंगे। उत्तम अध्ययन, उत्तम बोध और इन दोनों के साथ उत्तम आचरण और उस आगून की समाज में प्रचारण योग्यता हो ये सभी बातें पूर्ण करने में सक्षम हमारे शैक्षणिक परिसर होने चाहिए।

और ज्ञान पिपासा को दुष्प्रभावित नहीं करती थी फलतः यहाँ होने वाला ज्ञान विद्यार्थी के तप से सामंजस्य रखता हुआ जीवन का आदर्श मार्ग बनता था। ऐसे ही शैक्षणिक परिसर तक्षशिला की बात करते हैं तो वहाँ से पाणिनि, चाणक्य जैसे विद्वानों के भी विद्या सम्बन्ध रहे हैं। नालन्दा महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध दोनों महापुरुषों से सम्बन्धित रहा, नागार्जुन यहाँ शिक्षा ग्रहण करने गये, फाह्यान भी यहाँ आये तथा यहाँ 1510 आचार्य अध्यापन करते थे।

आज के शिक्षा परिसरों पर जब हम अपनी दृष्टि लगाते हैं तो पाते हैं कि हमारे ग्रामीण परिवेश के शिक्षालयों में अन्य सुविधाएँ तो बाद की बातें हैं बल्कि समुचित शिक्षण कक्षों का भी अभाव देखा जाता है। पुस्तकालय, वाचनालय, शौचालय आदि की व्यवस्थाओं का अभाव देखा जाता है। स्त्री शिक्षा की दृष्टि से ये असुविधाएँ और भी अधिक प्रश्न चिह्न खड़ा करने वाली हैं और यदि ग्रामीण परिवेश के निजी विद्यालयों की बात करते हैं तो वे शुल्क तो ग्रामीण क्षमता के हिसाब से बहुत अधिक वसूलते हैं पर उनके विद्यालयों का धनार्जन ही उद्देश्य दिखाई देता है। सघन बस्तियों की गलियों में विद्यालय स्थित हैं जो किसी पुराने जर्जर भवन में संचालित हैं जो कभी भी धराशायी हो सकते हैं। इसके साथ ही ऐसे कमजोर भवन पर ही मंजिलों पर मंजिल बना दी जाती हैं जो कि अत्यन्त असुरक्षित होती हैं ऐसे पर्यावरण में शिक्षा की दशा और दिशा क्या होगी स्वाभाविक ही ज्ञात होती है। अपने प्रभाव एवं सामाजिक सम्पर्कों से वे निम्न स्तर का पर्यावरण देकर संस्थानों की मान्यता भी प्राप्त करने में सफल रहते हैं। अभिभावक यह सोचते हैं कि हमारा बालक निजी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहा है अतः निश्चित ही वह योग्य होकर वहाँ से उत्तीर्ण होगा। पर ये निजी विद्यालयों में विद्यार्थी अपने परिश्रम और इन विद्यालयों की प्रतिष्ठा की महत्त्वाकांक्षा से लाभान्वित होकर अच्छे अंक तो किसी तरह प्राप्त कर भी जाते हैं पर इनमें प्रायोगिक योग्यता, कुशल अभिव्यक्ति, स्वच्छता और आधारभूत गुणों और योग्यताओं का अभाव रहता है जिसमें वे अपने जीवन में सफल नहीं हो पाते।

वहीं यदि हम उच्च संसाधनों से सुसज्जित शैक्षणिक संस्थानों की बात करते हैं तो देखते हैं कि वहाँ अच्छे भव्य छात्रावास हैं, कैन्टीन हैं अच्छा परिसर है। उत्कृष्ट फर्नीचर, आदि सभी बातें गुणवत्ता लिए होती हैं जिसके लिए वे मनमाना शुल्क वसूलते हैं जिससे धनाढ्य वर्ग के बालक वहाँ अध्ययन कर पाते हैं या फिर मध्यम वर्ग के अभिभावक कर्ज लेकर अपने बालकों को वहाँ अध्ययन करवा पाते हैं। ऐसे संस्थानों में सुविधाऐं तो पर्याप्त होती हैं पर बालकों का मनोविज्ञान अलग प्रकार से कार्य करता है जिससे जहाँ मध्यम वर्ग के विद्यार्थी अपने अभिभावकों की क्षमताओं से अधिक शुल्क देकर अध्ययन करते हुए हतोत्साहित से बने रहते हैं वहीं धनाढ्य वर्ग के विद्यार्थी

अपने धन का दुरुपयोग कर व्यसनों से भी ग्रस्त हो जाते हैं। इन परिसरों में रात्रिकाल में भी विद्यार्थियों की आवाजाही लगी रहती है। और शिक्षा के केन्द्रों के स्थान पर भौतिक मौज-मस्ती के केन्द्र अधिक बनते दिखाई देते हैं। संस्थानों का छात्रों पर नैतिक नियंत्रण समाप्त हो जाता है। फलस्वरूप वहाँ अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। हमारे ऋषियों ने जीवन के लिए एक मर्यादा का उपदेश दिया है वह है।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तं
येति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो
वृत्ततस्तु हतोहतः।।

अर्थात् चरित्र की प्रयत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिए धन तो आता है और जाता रहता है धन के नष्ट होने पर भी कोई नष्ट नहीं होता पर यदि चरित्र नष्ट हो गया तो सब कुछ नष्ट हो गया। ऐसे धनार्जन ही जिन संस्थानों का प्रमुख उद्देश्य है तो उन संस्थानों में अध्ययन करने वाले अभिभावकों एवं बालकों का भी शिक्षा का उद्देश्य धनार्जन ही निर्धारित हो जाता है फलतः चारित्रिक मूल्य नीचे गिर जाते हैं जो कि शिक्षा और समाज को लगने वाला मुख्य आधात है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में औचित्य की पालना एक प्रमुख कर्तव्य है और अनौचित्य पैदा होना ही गिरावट का कारण है। शैक्षणिक परिसरों के विषय में भी यह बात लागू होती है अत्यधिक भव्यता लिये हुये शैक्षणिक परिसर हों या आधारभूत सुविधाओं को भी तरसते शैक्षणिक परिसर हों उनमें कहीं न कहीं संतुलन की आवश्यकता है अधिक भव्य न हों लेकिन मूलभूत युगानुकूल सुविधा सम्पन्न शैक्षणिक परिसर हो या भव्य होते हुये भी सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्यों की स्थापना के प्रति प्रतिबद्ध शैक्षणिक परिसर हों तो दोनों ही अपने छात्रों का उत्तम चरित्र निर्माण कर सफल सिद्ध होते हैं। वास्तव में शिक्षा का महान् उद्देश्य चरित्र निर्माण ही है। धनोपार्जन, उत्तम सुख-सुविधा, सामाजिक सम्पर्क और प्रभाव ऐसे बहुत से आयाम हैं जो कि शिक्षा के द्वारा प्राप्त होते हैं पर वे गौण ही होते हैं जब तक कि वह उत्तम चरित्रवान नागरिकों का निर्माण न करे। इसलिए कहा गया -

एतद्देश प्रसूतस्य
सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्
पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

अर्थात् इस देश के लोगों से विश्व ने भी चरित्र की शिक्षा ली है। विद्यार्थी जिस शैक्षणिक परिसर में अध्ययन करता है वहाँ के अध्यापकों से आरंभीयता, अपने सहपाठी विद्यार्थियों के साथ अध्ययन, शैक्षणिक भ्रमण, खेलकूद, मनोविनोद, कथा, कहानी, वाद-विवाद, प्रातः भ्रमण, सायं भ्रमण, छात्रावासों में साथ-साथ रहना, साथ-साथ भोजन करना, स्वस्थ मनोरंजन करना ऐसे विभिन्न शैक्षणिक आयाम हैं जो कि शिक्षा के चरित्र निर्माण उद्देश्य को पूर्ण करते हुये एक उत्तम शैक्षणिक परिसर की देन हो सकती है और उससे एक उत्साही, नीतिज्ञ संवेदनशील, राष्ट्रप्रेमी, कर्तव्य परायण जैसे चरित्र की थाती वाले विद्यार्थियों का निर्माण हो सकता है जो देश और राष्ट्र की थाती बनते हैं।

अतः आज के हमारे शैक्षणिक परिसर इस प्रकार का शैक्षणिक पर्यावरण छात्रों के लिए उपस्थित करें जो कि युगीन समस्याओं के समाधान की शिक्षा तो दे हीं साथ ही छात्रों में नैतिक मूल्य और राष्ट्र गौरव की भावना का विकास भी कर सकें। वे छात्रों की नैसर्गिक क्षमताओं को प्रस्फुटित होने के लिए समुचित सुविधा और आत्मीय देखरेख की व्यवस्था सुनिश्चित भी करें तभी ऐसे गुणों को छात्रों में आत्मसात् करवाते हुये शैक्षणिक परिसर आदर्श शैक्षणिक परिसर के रूप में स्थान प्राप्त करने में सक्षम होंगे। उत्तम अध्ययन, उत्तम बोध और इन दोनों के साथ उत्तम आचरण और उस आचरण की समाज में प्रचारण योग्यता हो ये सभी बातें पूर्ण करने में सक्षम हमारे शैक्षणिक परिसर होने चाहिए। ❑

शिक्षा परिसरों में अनुशासन

डॉ. रेणु अरोड़ा

एसोसिएट प्रोफेसर
एस.एस. जैन सुबोध महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, जयपुर

अनुशासन ही अपने जीवन के उद्देश्य और उपलब्धि के बीच का सेतु है। - जिम रोन

और इस सेतु का निर्माण विद्यालय परिसर में होता है। विद्यार्थी विद्यालय में ही अनुशासन का पाठ सीखने की शुरूआत करते हैं। आचार्य चाणक्य ने तो यहाँ तक कहा है कि जो अनुशासित नहीं है, उसका न तो वर्तमान है ना ही भविष्य। रेडियो के आविष्कारक निकोलस टेस्ला का तो कहना ही है ''मैं केवल आत्म्-अनुशासन के माध्यम से अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सका और मैंने इसे तब लागू किया, जब तक कि मेरी इच्छा और मेरी इच्छा शक्ति एक नहीं हो गई।'' कहीं न कहीं उन्होंने भी आत्म-अनुशासन शिक्षा परिसर से ही आरंभ किया।

विद्यालय की हर गतिविधि के पीछे विद्यार्थी के अनुशासन का उद्देश्य होता है कि यदि मनुष्य अपने आस-पास दृष्टि दौड़ाए और फिर ध्यान से देखते हुए विचार करे तो उसे लगेगा हमारे चारों ओर एक बनी बनाई व्यवस्था है जिससे अप्रत्यक्ष रूप से जुड़कर सभी कार्य कर रहे हैं। इस प्रक्रिया में संबंधित नियमों का पालन करना ही अनुशासन है। जैसा कि प्रकति में सर्व ग्रह आदि अनुशासनबद्ध हैं इसलिए हजारों वर्षों से उनकी गति क्रम में चल रही है। प्रकृति का ही उदाहरण लेते हैं। हम देखते है कि सूर्य समय पर निकल रह है और तारे समय पर उदय होकर छिप रहे हैं। कुछ ऐसी ही व्यवस्था विद्यार्थियों के लिए भी आवश्यक होती है। इसी व्यवस्था का दूसरा नाम अनुशासन है।

विद्यार्थी जीवन मानव जीवन का स्वर्णिम काल होता है। जीवन के इस पड़ाव पर वह जो भी सीखता, समझता है अथवा जिन नैतिक गुणों को अपनाता है। वही उसके व्यक्तित्व व चरित्र निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। प्रातः कालीन सभा में विद्यार्थी ब्रह्माण्ड के उस परम अनुशासन को नमन करता है जिसके तहत इस सृष्टि का निर्माण हुआ है। सूर्य को नमन क्योंकि वो प्रकाश देने के अपने अनुशासन के प्रति प्रतिबद्ध है। पृथ्वी को नमन जिसके तहत पृथ्वी सूर्य के चारों ओर 365 दिन में चक्कर लगाती है फिर हम देखें तो सभी विद्यार्थी एक ही यूनिफार्म के अनुशासन का पालन करते हैं जिससे कि अमीर-गरीब, जाति, धर्म सभी विभिन्नताओं को परे रख विद्यार्थियों में एकता तथा मैत्री भाव के साथ विद्या ग्रहण करने की इच्छा का प्रादूर्भाव होता है। अनुशासन का महत्त्व सर्वत्र है। जीवन में कदम-कदम पर अनुशासन का महत्त्व है। निरंकुश जीवन स्वेच्छाचारिता का शिकार होकर लक्ष्य से भटक जाता है विद्यार्थी जीवन में अनुशासन का विशेष महत्त्व है यह जीवन का निर्माण काल होता है।

शिक्षा परिसर का प्राथमिक उद्देश्य ही है विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास करना, जिसके तहत प्राचार्य, शिक्षकगणों व शिक्षा परिसर से संबंधित सभी लोगों का यह

जीवन में सफलता की एकमात्र कुंजी अनुशासन ही है। धरती पर जितने भी महान स्त्री-पुरुष हुए हैं, वे सब अपने कठोर अनुशासन के कारण ही प्रसिद्धि तक पहुँचे। अनुशासन के बिना न परिश्रम संभव है और न ही सफलता। अनुशासन का मूल मंत्र ही किसी विद्यार्थी को सफलता तथा श्रेय की बुलन्दियों तक पहुँचा सकता है। सही अर्थों में विद्यार्थी का अर्थ विद्या को प्राप्त करने का इच्छुक और निरन्तर प्रयत्नशील रहना। लेकिन विद्या का अर्जन बिना अनुशासन के बगैर संभव नहीं। ज्ञान-प्राप्ति तो नियमों के कठोर पालन से ही हो सकती है। नियम, संयम व अनुशासन ही विद्यार्थी की धरोहर व पहचान है।

प्रयास रहता है कि विद्यार्थी में अनुशासन की भावना का विकास हो यह तभी संभव है जब विद्यार्थी अनुशासन के महत्त्व को समझे। शिक्षा परिसर के नियमों का पालन व सम्मान करते हुए विद्यार्थी जब विद्यालय से निकलता है तो देश के एक जिम्मेदार नागरिक की तरह देश के कानून तथा संविधान का भी सम्मान करना सीखता है। गुरु का उचित मार्गदर्शन विद्यार्थी को महानता के शिखर की ओर ले जाने में समक्ष है।

विद्यार्थियों में अनुशासन के लिए निम्न पाँच गुणों का होना आवश्यक है। हम जानते हैं कि विद्यार्थी ही किसी राष्ट्र के निर्माता और भविष्य होते हैं। इनके निर्माण का गुरूतर उत्तरदायित्व अध्यापकों और विद्यालय के वातावरण पर है। उसे सदैव अपनी दैनिक गतिविधियों पर निगरानी रखनी होगी तथा जीवन में जो कुछ शुभ है उन्हें अपनाने के अभ्यास करने होंगे।

''काकचेष्टा, बकोध्यानम् श्वान निद्रा तथैव च। अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थिनः पंच लक्षणम्।।''

काकचेष्टा – जिस प्रकार कौआ अपने भोजन के लिए हर प्रकार का यत्न करता है, ठीक उसी प्रकार विद्यार्थी को अध्ययन में सफलता के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

बकोध्यान – जिस प्रकार बगुला अपने शिकार पर एकाग्रचित रहता है, उसी प्रकार विद्यार्थी को पढ़ने में दत्तचित्त रहना चाहिए।

श्वाननिद्रा – विद्यार्थी को श्वान की भांति बहुत कम सोना चाहिए। उसे अति गहरी नींद में नहीं सोना चाहिए।

अल्पाहारी – विद्यार्थी को भोजन कम मात्रा में करना चाहिए। अधिक भोजन करने से आलस्य आता है।

गृह-त्यागी – घर से दूर रहने पर पढ़ने में मन अधिक रमता है। इन सब गुणों वाला ही 'सच्चा विद्यार्थी' होता है।

विद्यालय में एक आदर्श विद्यार्थी कहलाने के लिए अनुशासन का पालन अनिवार्य है। इसके लिए विद्यालय के नियमों, अपने अध्यापक एवं प्रधानाचार्य की आज्ञा का पालन करना अत्यावश्यक होता है। इतना ही नहीं, विद्यालय की संपत्ति को नुकसान न पहुँचाना तथा अपने आस-पास साफ-सफाई रखना अनुशासन के ही अंग है।

जीवन में सफलता की एकमात्र कुंजी अनुशासन ही है। धरती पर जितने भी महान स्त्री-पुरुष हुए हैं, वे सब अपने कठोर अनुशासन के कारण ही प्रसिद्धि तक पहुँचे। अनुशासन के बिना न परिश्रम संभव है और न ही सफलता। अनुशासन का मूल मंत्र ही किसी विद्यार्थी को सफलता तथा श्रेय की बुलन्दियों तक पहुँचा सकता है। सही अर्थों में विद्यार्थी का अर्थ विद्या को प्राप्त करने का इच्छुक और निरन्तर प्रयत्नशील रहना। लेकिन विद्या का अर्जन बिना अनुशासन के बगैर संभव नहीं। ज्ञान-प्राप्ति तो नियमों के कठोर पालन से ही हो सकती है। नियम, संयम व अनुशासन ही विद्यार्थी की धरोहर व पहचान है।

अतः हम कह सकते हैं कि एक आदर्श एवं अनुशासित विद्यार्थी वह है जो समर्पित रूप से अध्ययन करता है, ईमानदारी से व्यवहार करता है, और वह ऐसा नागरिक बने कि जो दूसरों के लिये प्रेरणास्त्रोत बन सके और इस प्रकार का चरित्र निर्माण करने में शिक्षा परिसर की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बात की जाये तो आज आधुनिकता की दौड़ में विद्यार्थियों की मानसिकता में भारी बदलाव आ रहा है, जैसे पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव, चकाचौंध दुनिया की कल्पना करना, नैतिक मूल्यों का पतन उनको अनुशासनहीनता की ओर अग्रसर कर रहा है। और विद्यार्थी जीवन किसी भी व्यक्ति के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण काल होता है। इसी काल पर व्यक्ति का संपूर्ण भविष्य निर्भर करता है। इस काल का सदुपयोग करने वाले विद्यार्थी अपने शेष जीवन को आरामदायक और सुखमय बना सकते हैं। इस काल को व्यर्थ के कार्यों में नष्ट करने वाले विद्यार्थी अपने भविष्य को अंधकारमय बना देते हैं। विद्यार्थी जीवन में ही व्यक्ति के चरित्र की नींव पड़ जाती है। अतः बहुत सोच समझकर कदम उठाने की आवश्यकता है। ऐसे में शिक्षा परिसर का विशेष कर्तव्य हो जाता है कि वे विद्यार्थियों में चरित्र निर्माण, मूल्यों, संस्कारों, रीति-रिवाजों, सकारात्मक विचार व सुशिक्षा से अवगत करवाये ताकि हमारे भारत देश के विद्यार्थी विश्व स्तर पर देश का नाम रोशन कर सके। जैसे राणा प्रताप, शिवाजी, सुभाष चन्द्र बोस, महात्मा गाँधी, ए.पी.जे. अब्दुल कलाम आदि सभी ने इसी अनुशासन के बल पर ही सफलता प्राप्त की। अनुशासन ही सफलता एवं विश्वास का मूलमंत्र है। ❑

Teaching and Learning and Environmental Context

Dr. T.S. Girishkumar
Professor of Philosophy (Rtd.)
MSU Baroda
(Gujarat)

The fundamental process of education ought to be teaching and learning unlike some post-modern communists who wish to present it as self-learning through intellectually guiding students towards self-learning. This intellectually guiding students to self-learning phenomenon is as unclear and confusing as the running post-modern jargons often put forward by some of such so called thinkers to get confused followers through intense confusions of jargon mongering. This also being the case with contemporary education ongoing, our concern here is something not very directly connected to this; albeit it affects the thing in question very much: our concern here is the context of educating, or the environment of the process of teaching and learning.

Environment or the context

It may appear that the context or environment has nothing significant to do with the process of teaching and learning, but on scrupulous analysis, it shall be proved otherwise. This can at once be made clear by picking up instances of the same kind of teaching and learning done in different environments, or context. With varying contexts in our Bharat, this rather becomes much easy.

We have Kendriya Vidyalays all over Bharat, and they have same curricula, same administration and same teachers who keep getting transfers to various places. Let us pick up two different contexts or environments with which I am personally familiar with, Gujarat and Kerala. Anyone can go for a sample survey and anyone can formulate a questionnaire and the result shall be simply striking. I haven't done any such survey in person, but I do have observed – first hand experiences which shall be sufficient to provide a hypothetical conclusion logically, which can amount to my prediction.

From this generalisation, let us go into a specific concept in these two categories of students, and for instance, let us take the fundamental concept of 'Kutumba'. Let us try to find out how the

Kutumba concept is understood and handled by the students of Gujarat and Kerala. Let us remember that the concept of Kutumba becomes very important in the Vedopanishadic knowledge tradition, and obviously in Bhartiya Sanskriti. An integrated Kutumba is the essentially basic unit of the epistemology of co-existence, which is one of the cardinal principles of Bhartiya knowledge tradition. The process shall be something like this: from integrated Kutumba to integrated society and then to integrated Rashtra. Borrowing from Pujaniya Guruji, the co-existence of different members of the Kutumba is built upon the principle of Tyaga, where one is ever prepared to sacrifice for the other. Pujaniya Guruji was comparing the 'social contract theories' of European political philosophy, and he strongly suggests that Bharatiya society is not contractual, it is based on the concept of Tyaga. Tyaktenabunjita is what the Upanishads teaches us, and that is the basis of our co-existence of the multiple and plural.

The process of education under these contexts do carry such categories knowingly or unknowingly. In this process, Bharatiya Sanskriti is hardly touched upon, and European individualism and self-orientation becomes influential. This being the social context, education carried out in such context fail to approximate the desideratum of Vasudhaiva kutumbakam or Ekamsad vipra bahudhavadanti. The example of Kerala society is indeed, glaring and at the same time indicates impending disaster of disintegrating societies.

Some statistics

General statistics suggests that the society of Kerala has the maximum number of breaking families and divorces. It may also be the case that the same society is also number one in orphanages and old homes. The siblings find old parents both liability and burden, the siblings mostly live abroad and are economically well off, and they find it convenient to dump old parents in old homes and keep paying money to the old homes out of their 'duty' to parents. Kerala is number one in such cases, as the politicians keep claiming of their being number one in all kind of things.

Nuclear families are an increasing phenomenon in Kerala, the wife and husband just prefer their 'privacy' with no interference from anyone. Individualism had already taken over, and individuals consider themselves as autonomous with the existentialistic premise that 'the other is a threat'. Grandchildren don't find grandparents any good, and they interact less even when they happen to meet: there is no communication between grandchildren and grandparents. The situation of the society could well be imagined.

In my experience, such things do not happen in Gujarat, at least it is not perceivable in the society. What is perceived is just the opposite, co-existence is given in perception, Sanskriti is given in perception. I need not elaborate much.

The context of 'Tridoshas'

Communism, Separatist Islam and Separatist Christianity are considered as the three 'Doshas' in Bharat. Among these, communism by default is against Nationhood per say, as they aspire for internationalism in theory. Separatist Islam wants Dar-Ul-Islam, and such people had been

aspiring for the same like in the case of Jamluddin Afghani. Separatist Christianity gets standing funds for conversions through the dictum of you are wrong and we are right, an age-old phenomenon. All these are intensely active in Kerala.

The process of education under these contexts do carry such categories knowingly or unknowingly. In this process, Bharatiya Sanskriti is hardly touched upon, and European individualism and self-orientation becomes influential. This being the social context, education carried out in such context fail to approximate the desideratum of Vasudhaiva kutumbakam or Ekamsad vipra bahudhavadanti. The example of Kerala society is indeed, glaring and at the same time indicates impending disaster of disintegrating societies.

The importance of context or environment

I had a PhD student, who was born and brought up abroad. Such students normally and usually carry the mannerism and ways of western living, especially having done her entire schooling and higher educations abroad. But this student remains an exception, just for one reason that her parents belong to the 'Swaminarayan' sampradaya, and she had been into the sampradaya right from the childhood. Her PhD was on the Sampradaya as well. Despite having born and brought up abroad, she remains a complete Bharatiya child. Just with this example alone, one can easily demonstrate the impact of context and environment in education – one need no further instances.

Maharishi Gautama says a very important thing about education and knowledge. He says that knowledge must affect the knower, or what one may consider as knowledge shall never be knowledge, that shall simply be information only. He insists on the 'affectivity' – "Badhita" aspect of knowledge through an intense process of 'sputikarana' – refinement of the person who is knowing. This refining process is the process of 'Sanskarana' – 'Sanskritavatkarana' of higher levels of refining. The Sanskriti of Bharat, Bharatiya Sanskriti, is an ultimate manifestation of this process of refining beginning with context, environment and say, 'parisara'.

What shall make one an authentic Bharatiya is Bharatiya Sanskriti, which is Indebatable, indubitable. The End-Desideratum of Bharatiya education system ought to be making of authentic Bharatiyas, who shall be Sanskari Bharatiyas. Should the parisara be inappropriate, this desideratum may not be reached. Hence should the parisara be inappropriate, there shall be no real point in any as well as all kinds of education. It may appear that parisara is not significant, but in reality, parisara shall be the very edifice upon which education must be imparted and built. ❑

Analyzing the Problems of Students in the Pedagogy of Education : P R Sarkar's Views

Dr. Sindhu Poudyal
Assistant Professor
Department of Philosophy
Tripura University

P. R. Sarkar's theory of education is also called neo-humanist education where he tried to necessitate the significance of education in human development. The reason being educated is not essential for mere development because development for good or bad happens spontaneously whether we formally do it or not. But because human intelligence remains unattended for longer it may lead to adverse impacts and in return can turn destructive for the whole of humanity. One of the major reasons why it is essential to offer education formally (or even informally) to learners is for a constitution of civil society. Another aim that the classical education system promotes – is that it is one of the marches through which one can be knowledgable and the one who knows becomes liberated from the world of limitation. Hence, in several of his discourses, he holds - What is jñna? There are two types of jñn: mundane knowledge, or apara- jñna, and spiritual knowledge, or para-jñna. Mundane knowledge may be defined as the internal projection of external physicality. And para-jñna or spiritual knowledge is the internal projection of the internal or cosmic spirituality. This is all jñna 1. Hence, one thing which is clear in P R Sarkar's view is that if our education aims to be knowledgable then what would be the purpose and usage of such knowledge, and within that knowledge system what role and responsibility that a student/ learner must have. I am going to analyzing following few passages.

Neohumanism as a whole and neohumanist education in particular in P R Sarkar's words aims to promote the all-round development of the world which is based on the states, structures, changes, and modifications of

all these qualitative differences among the learners. So according to him, no all-round progress is possible while ignoring any entity, irrespective of its molecular, atomic, or electronic base. That is why any thought along sectarian lines is fundamentally incorrect. And this is the reason why he holds, "I am compelled to say that the path of Neo Humanism, is the only path of welfare ... the only path of progress. And this is a path that is predetermined by the Supreme Shelter (prapattinivaddha) ... there is no other second path." (Shabda Cayanika Part 4).

Education is a centrally learner-driven process and it has to be because education aims to allow an individual to gradually reach perfection in all four spheres – physical, psychical, social, and spiritual. Hence in the neohumanist paradigm, P R Sarkar highlights the following crucial issues related to the students which need proper attention while framing policies related to education – Firstly, he holds it is improper to extort anything from students through undue pressure and intimidation. Intimidation appears to work to some extent, but it does not yield lasting results. Whatever students learn from their parents and teachers out of fear fades into oblivion as soon as the agencies of fear disappear. The reason is that their learning and their fear were inseparably associated, so with the disappearance of fear, the knowledge that they had acquired in the course of their education also disappears from the more developed parts of their minds. Hence, as soon as the rude teacher leaves the classroom the students instead of introspecting the learning feel a little relaxed that the class ended. However, the remittance of the class continues for a longer duration i.e within a few hours, whatever they had stored in memory gradually starts to erase. There are incidents in everyday occurrences that out of fear of failing their examinations, students work hard in a disinterested manner, and when they meet failure instead of improvement many prefer to quit, or commit suicide because their expectations don't match with what they have anticipated. More so, many would remain forgetful once the task is completed, i.e completion of the course/examination. Hence, one of the essential factors to promote a fruitful education a student needs to be free from fear. Fear of failure seems to be one of the very first hurdles in the process of gaining fruitful education.

P. R Sarkar further proposes that people in many countries throughout the world are painfully experiencing the detrimental effects of education through the medium of fear. Most educated people lose the abilities they acquired through education after they graduate from school or university and enter their field of work. If one were to assess the outcome (both in terms of quality and quantity) of the education these people received, one gets to the conclusion that most of these

learners, time, ability, and labor had been wasted or had been passed meaninglessly. Hence, infesting intimidation to impart education could be a misnomer. There has to be a genuine thirst for knowledge among the learners and it must be awakened to quench that thirst. Then only education as a process will be worth giving and worth receiving – in terms of the development of body, mind, and spirit and this can be one of the ideals for the student.

Another aspect of P. R Sarkar's learner-centric education is to take into consideration the nature of education which is imparted to the different groups of students for instance, small children are by nature most inclined towards play, so a thirst for knowledge will have to be awakened in children through the medium of play – like fancy stories, fantasies or also by fairy tales. Because they are more imaginative and emotional, through stories, they can easily be taught the history and geography of the globe, and they may also be taught the initial lessons of how to practice universalism in their lives because they are small but not naïve. They can adapt and learn. Values like equality, universality, etc can be imparted to the learner even at a very small age. However, adolescent learners, are future-oriented and their minds are full of dreams of the future. So according to Sarkar, adolescents should be taught, without indulging in narrow-mindedness, through the medium of idealism. However, the minds of young adults, are inclined towards realism, so in their case, pure idealism might not be effective hence to educate such young adults, a harmonious blend of idealism and realism is required.

Education is a centrally learner-driven process and it has to be because education aims to allow an individual to gradually reach perfection in all four spheres – physical, psychical, social, and spiritual. Hence in the neohumanist paradigm, P R Sarkar highlights the following crucial issues related to the students which need proper attention while framing policies related to education – Firstly, he holds it is improper to extort anything from students through undue pressure and intimidation. Intimidation appears to work to some extent, but it does not yield lasting results.

All these pedagogies are to be actualized through a teacher and for that reason P R Sarkar holds, Teachers must bear in mind that their students – whether very young learners, adolescents, youths, old people, or actual children – are, to them, all just children of different ages; and that they are children like their students. If teachers distance themselves from their students or continually try to maintain a forced gravity, they will not be able to establish sweet, cordial relations with their students. In return instead of making teaching-learning an effective affair for achieving developmental goals tends to be disinterested and boring. The free and frank exchange of ideas is simply not possible unless a feeling of mutual affection is established. The lack of cordial relations causes many children to heartily wish for the death of either their severe teachers or their abusive parents. ❑

Smart Campus : A Step Towards Knowledge Superpower

Dr. Jaya Sharma

Assoc Prof,
Faculty of Management,
Pacific Academy of Higher
Education & Research
University, Udaipur (Raj.)

The knowledge superpower status, envisaged in the National Education Policy, 2020 makes it expedient to inculcate world class quality and innovativeness in education. Rapid and ongoing emergence of advanced technologies, such as Artificial Intelligence, Machine Learning, Internet of Things, Robotics, Immersive Learning, Quantum Computing, among others, has brought about a transformative impact across various sectors, with the education sector being no exception. These smart technologies are rapidly shaping and influencing the modus vivendi, business, and educational framework including the methodologies employed in the pursuit of knowledge. These transformative technologies are finding application even in our socio-cultural, political, and strategic domains. A smart campus enhances overall performance, efficiency, learning and research to be competitive and globally relevant in the arena of education. The integration of smart connected systems within a campus can revolutionize traditional pedagogical methods.

Need of a Smart Campus

A smart campus incorporates digital technologies and data analytics to optimise the overall learning experience for students and the functioning of institution. The concept of smart campus is key to digital transformation of education. It provides students with seamless access to educational resources such as Learning Management Systems, digital platforms and mobile apps. Technologies like Beacon, RFID and NFC can help locate and track students and their presence in the campus. Overall, smart campuses can be considered as anchors for the digital transformation of education as

they provide students and educators with the necessary tools and technologies to enhance the learning experience, efficiency, productivity, security and sustainability of the educational institutions.

Global Trend

The trend of smart campus is gaining popularity globally, and many universities and educational institutions are investing in technology to improve the student experience and increase operational efficiency. Out of hundreds of such smart campuses that are fast emerging world over, let's take up a single example of the Georgia institute. The Georgia Institute of Technology in the US is a representative example of smart campuses evolving in Euro-American countries. They have implemented a wireless network infrastructure, IoT-enabled campus security system, mobile app for students, data analytics, and a smart energy management system to provide access to digital resources, improve security and provide real-time information to students, staff and faculty. These initiatives have helped the university to improve student experience, increase efficiency, and reduce costs and energy consumption.

A smart campus incorporates digital technologies and data analytics to optimise the overall learning experience for students and the functioning of institution. The concept of smart campus is key to digital transformation of education. It provides students with seamless access to educational resources such as Learning Management Systems, digital platforms and mobile apps.

How To Begin

Educational institutions in the country can achieve this by adhering to a set of guidelines, which include the formulation of a clear vision and strategy that outlines the goals and objectives to be achieved such as enhancing the student experience, increasing efficiency and reducing costs. Secondly, universities must conduct a comprehensive assessment of the existing infrastructure to identify areas that need improvement in order to support a smart campus. The needs of students, staff, and faculty must be identified and prioritized to determine the specific technologies and services required to support a smart campus. A detailed plan of implementation, including timelines, budgets, and resources required, must be developed. The implementation of necessary technologies such as IoT devices, data analytics platforms, and mobile and web applications is crucial to support the smart campus. The smart campus must be rigorously tested and evaluated to ensure that it meets the goals and objectives and necessary adjustments must be made. Furthermore, a continuous monitoring and improvement process must be in place to keep the smart campus up-to-date and efficient. Collaboration with partner such as technology vendors, service providers, and other institutions to share knowledge and best practices and to develop innovative solu-

tions should also be considered. The process of building a smart campus is a complex and ongoing process, but with a clear vision, strategy, and plan in place, universities can successfully implement and maintain a smart campus that supports the needs of their students, staff, and faculty. The higher educational institutes (HEIs) and schools too need to follow the suit.

Future of Smart Campus

The future of smart campuses is expected to be influenced by a plethora of emerging technologies and trends. These include the integration of Artificial Intelligence and Machine Learning technologies, which will provide students with personalized learning experiences and enable universities to analyse large amounts of data to improve campus operations. Augmented Reality and Virtual Reality technologies will become more prevalent, providing students with immersive and interactive learning experiences, and allowing them to access educational resources from any location at any time. Furthermore, 5G networks will offer faster and more reliable connectivity on smart campuses, enabling new use cases such as real-time video streaming and more accurate location-based services. Additionally, the use of LoraWan enabled Internet of Things (IoT) devices on smart campuses will continue to grow, providing universities with more data and insights to optimize campus operations and improve the student experience. Blockchain technology will be used to secure and manage data on smart campuses, providing students and faculty with secure access to educational resources and allowing universities to manage and share data more efficiently. Cybersecurity will become increasingly important as universities collect and store more data to protect sensitive information and prevent cyber-attacks. Smart campuses will also play a critical role in making the campus more sustainable by reducing energy consumption and waste and promoting environment friendly practices.

Conclusion

In conclusion, smart campuses have the potential to revolutionize the way education is delivered, by providing students with access to digital resources and technologies, and by allowing universities to optimize their operations and resources. Smart campuses integrate various technologies such as IoT, Artificial Intelligence, Machine Learning, Virtual and Augmented Reality, 5G networks, blockchain, and cyber security to create an immersive and automated experience for students, staff, and faculty. The future of smart campus is expected to be shaped by these emerging technologies and trends, and will provide students with more personalized and interactive learning experiences, and allow universities to operate more efficiently and sustainably. Smart campuses are not only an investment in the future of education but also in the future of society. The benefits of smart campus are many and universities should consider investing in building one for the betterment of the all its stakeholders. ❑

भारत में अपने घर एवं बाहर अनेक देवी-देवताओं की प्रार्थना करते हैं। प्रत्येक जाति के विशिष्ट देवी-देवता मन्दिर और देवस्थान हैं। यज्ञ ही भारतीय लोगों के धर्म का मुख्य अंग हैं। पत्रों से जल छिड़कने, देवी-देवताओं था विशेष भोग चढ़ाने से लेकर पशु तक के रूप में यज्ञ किया जाता है। यज्ञ के द्वारा वर्षा, नदी और रोगों के देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाता है।

भारतीय धर्म संस्थानों की संस्कार पद्धति

डॉ. सुनीता कुमारी
सहायक प्राध्यापक,
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय,
राँची (झारखण्ड)

हिन्दू धर्म की संस्कृति संस्कारों पर ही आधारित है। ऋषि मुनियों ने मानव जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिए संस्कारों का आविष्कार किया।

संस्कार शब्द का मूल अर्थ है - 'शुद्धीकरण अर्थात् मन वाणी और शरीर का संयम। हमारी सारी प्रवृत्तियों का संप्रेरक हमारे मन में पलने वाला संस्कार होता है। ऋग्वेद में संस्कारों का उल्लेख नहीं है किन्तु इस ग्रंथ के कुछ सूक्तों में विवाह, गर्भाधान और अंत्येष्टि से संबंधित कुछ धार्मिक कृत्यों का वर्णन मिलता है। यजुर्वेद में केवल यज्ञों का उल्लेख है इसलिए इस ग्रंथ में संस्कारों की विशेष जानकारी नहीं मिलती। अथर्ववेद में विवाह, अंत्येष्टि और गर्भाधान संस्कारों का पहले से अधिक विस्तृत वर्णन मिलता है। गोपथ और शतपथ ब्राह्मण में उपनयन गोदान संस्कारों के धार्मिक कृत्यों का उल्लेख मिलता है। तैत्रिरीय उपनिषद् में शिक्षा समाप्ति पर आचार्य की दीक्षांत शिक्षा मिलती है।

कुमारिल ने तंत्रवार्तिक ग्रंथ में मनुष्य के योग्य बनने के दो प्रकार बताए हैं - 1) पूर्व कर्म के दोषों को दूर करने तथा 2) नए गुणों का उत्पादन करके। संस्कार ये दोनों ही काम करते हैं। संस्कारों के द्वारा मनुष्य अपनी सहज प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास करके अपना और समाज दोनों का कल्याण करता है। ये संस्कार मनुष्य के इस जीवन को ही पवित्र नहीं करते बल्कि उसके पारलौकिक जीवन को भी पवित्र बनाते हैं।

हमारे भारतीय धर्म के अनुसार 16 संस्कारों के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिष्कार किया जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति के सोलह संस्कारों में शामिल हैं - गर्भाधान संस्कार, पुंसवन, सीमांतोयंत्रन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, केशान्त, समावर्त्तन, विवाह, अंत्येष्टि आदि। व्यास स्मृत्ति में इन सोलह संस्कारों का वर्णन मिलता है।

भारत की जनसंख्या के 79.8 प्रतिशत लोग हिन्दू धर्म का अनुसरण करते हैं। 15.23 प्रतिशत (इस्लाम) 0.70 प्रतिशत बौद्ध धर्म 2.3 प्रतिशत (ईसाई धर्म) 1.72 प्रतिशत (सिक्ख धर्म) भारत एक ऐसा देश है जहाँ धार्मिक विविधता और धार्मिक सहिष्णुता को कानून तथा समाज दोनों द्वारा मान्यता प्रदान की गई है। भारत विश्व की चार प्रमुख धार्मिक परम्पराओं का जन्मस्थान है- हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म तथा सिख धर्म। भारतीयों का एक विशाल बहुमत स्वयं को किसी न किसी धर्म से संबंधित अवश्य मानता है। सभी धर्मों के प्रति हिन्दू धर्म के आतिशय भाव के विषय में जॉन हार्डन लिखते हैं-

''हालांकि वर्त्तमान हिन्दू धर्म की सबसे महत्त्वपर्ण विशेषता उसके द्वारा एक ऐसे गैर-हिन्दू राज्य की स्थापना करना है जहाँ सभी धर्म समान हैं।''

भारतीय जीवन परम्परा में चार पुरुषार्थों की कल्पना की गई है - धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष। इन्हें जीवन का मूल तत्व कहा जाता है। इन्हें प्राप्त कर लेना मानव जीवन की वास्तविक उपलब्धि कही जा सकती है।

हिन्दू धर्म में धर्म का सार निम्नलिखित रूप में बताया गया है-

''आत्मन: प्रतिकुलानि परेषाम न समाचरेत'' अर्थात् जो आचरण या व्यवहार स्वयं के लिए पसंद न हो वैसा आचरण दूसरों के लिए नहीं करना चाहिए। सच कहा जाय तो - ''अच्छी बातों को व्यवहार में लाना ही धर्म है।'' हिन्दू धर्म की मान्यता के अनुसार रामचरित मानस तथा भगवत् गीता इस्लाम धर्म के अनुसार पवित्र पुस्तक कुरान तथा बौद्ध धर्म के अनुसार त्रिपिटक और सिक्ख धर्म के अनुसार गुरु ग्रंथ साहब और ईसाई धर्म के अनुसार बाइबल को धार्मिक ग्रंथ की सर्वोच्च मान्यता दी गई है।

भारत में अपने घर एवं बाहर अनेक देवी-देवताओं की प्रार्थना करते हैं। प्रत्येक जाति के विशिष्ट देवी-देवता मन्दिर और देवस्थान हैं। यज्ञ ही भारतीय लोगों के धर्म का मुख्य अंग हैं। पत्रों से जल छिड़कने, देवी-देवताओं था विशेष भोग चढ़ाने से लेकर पशु तक के रूप में यज्ञ किया जाता है। यज्ञ के द्वारा वर्षा, नदी और रोगों के देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाता है।

प्राणी मात्र और प्रकृति की सेवा का भाव सनातन धर्म की पूजा-पद्धति और मान्यताओं में समाहित हैं।

कहा जाता है कि मानवता की सेवा करने वाले हाथ उतने ही धन्य होते हैं जितने परमात्मा की प्रार्थना करने वाले अधर।

नि:संदेह सेवा भावना मानव की ऐसी सर्वोत्तम भावना है, जो उसे पूर्णता प्रदान करती है। सेवा भाव ही मानव-जीवन का वास्तविक शृंगार और सौंदर्य है। ❑

स्वराज 75 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति

गोविन्द सिंह
गांव नयाबाडिया,
पो. सुमेल, तह. रायपुर,
जिला पाली (राज.)

शिक्षा को पूरी तरह नि:शुल्क कर दिया जाय। शिक्षा में राजनीति ज्ञान, विज्ञान, इतिहास, गणित, अंक शास्त्र शास्त्र ज्ञान संस्कृति संस्कार धर्म संस्कृति हमारे तीज त्यौहार शस्त्र ज्ञान आत्म रक्षा के तरीके पढ़ाया जाय।

भारत में फ्रेंच, डच, पुर्तगाली, पठान, तुर्क, मुगल और अंग्रेज आए। इन्होंने अपनी ताकत के आधार पर भारत का आर्थिक शोषण किया। केवल आर्थिक शोषण ही नहीं, जो ईसाई देश थे, वहाँ की ईसाई मिशनरियों ने इन ताकतों का सहयोग लेकर बड़े पैमाने पर हिन्दू को मिटाने का प्रयास किया। भारत लूटने के लिए अनेक आक्रमण किए और तलवार के जोर पर धार्मिक स्थानों को लूट कर नष्ट किया महिलाओं की अस्मिता लूटी गई और बड़े पैमाने पर रक्तपात किया 'मैकाले शिक्षा नीति के माध्यम से ऐसे लोगों को तैयार किया जो शक्ल सूरत से भारतीय हो लेकिन विचार व्यवहार से अंग्रेज हो' अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत शत प्रतिशत शिक्षित था। भारत में 5 लाख से ज्यादा गुरुकुल थे, जिनमें बिना जातिभेद व लिंगभेद के अध्ययन, अध्यापन का कार्य होता था। लेकिन अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा तंत्र को नष्ट कर अपनी शिक्षा पद्धति हम पर थोपी। स्वाधीनता के बाद वामपंथियों ने उस शिक्षा व्यवस्था को जानबूझकर बनाए रखा एवं भारतीय इतिहास में गौरव को विघटित किया एवं गौरवशाली इतिहास के प्रसंगों को इतिहास में कोई स्थान नहीं दिया गया।

राष्ट्र के विकास में शिक्षा महत्त्वपूर्ण स्तंभ है। अकादमिक सशक्तता के साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मजबूती के लिए भी शिक्षा का उतना ही महत्व है। अति प्राचीन भारतीय शिक्षा की संस्कृति को वैश्विक स्तर पर सैकड़ों वर्ष पहले से ही सराहा जा चुका है। तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वप्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र जहाँ विदेशों से लोग आते थे शिक्षा लेने देश मे ऐसे ऐसे अनेक निर्माण हुए जिनका आज मशीनरी युग मे भी निर्माण करना असंभव है लेकिन उस युग में हुए हैं जैसे तमिलनाडु में कावेरी नदी पर स्थित कल्लनई का ग्रैंड एनीकट हजारों साल पुराना बांध, महाराष्ट्र के औरंगाबाद में एलोरा का कैलाश मन्दिर जो एक ही चट्टान को काट कर ऊपर से नीचे की ओर बनाया गया, ऐसा ही एक और मन्दिर है दक्षिण भारत मे राजा चोल द्वारा बनाया गया तंजावुर का मन्दिर जिसके शिखर पर 80 टन वजनी पत्थर रखा हुवा है सोचने का विषय यह है कि इतनी ऊंचाई पर इतना भारी पत्थर सटीकता से कैसे रखा होगा यह सब जीता जागता उदाहरण है लेकिन इतिहास के पन्नों से गायब है हमें सिर्फ ताजमहल पढ़ाया गया, हमे मिस्र के पिरामिड पढ़ाये गये, आखिर क्यों भारत को शिक्षा नीति बदलनी होगी जो इतिहास के पन्नों से गायब है। उनको प्रथम पृष्ठ पर लाना होगा रामायण, गीता, महाभारत, वेद, पुराण, उपनिषद, हमारी शिक्षा में शामिल करना होगा स्कूलों में हिन्दी, संस्कृत को विशेष दर्जा देना होगा और मोबाइल में हिन्दी के लिये 1 संस्कृत के लिये 2 अंग्रेजी के लिये 3 दबाओ, यह ध्वनि मोबाइल पर जिस दिन सुनाई देगी तब हम समझ जायँगे कि देश का पुन: निर्माण हो रहा है अब देश बदल रहा है अंग्रेजों के बनाये कानून अब खत्म हो रहे हैं हमें हमारी मातृ भाषा को यह सम्मान दिलाना होगा और उसके सम्मान के लिये स्कूलों, दफ्तर, बैंक, सरकारी, गैर सरकारी कार्यालयों में हिन्दी मे साक्षात्कार को प्रमुखता देनी होगी।

शिक्षा को पूरी तरह नि:शुल्क कर दिया जाय। शिक्षा में राजनीति ज्ञान, विज्ञान, इतिहास, गणित, अंक शास्त्र, शास्त्र ज्ञान संस्कृति, संस्कार, धर्म, संस्कृति, हमारे तीज त्यौहार, शस्त्र ज्ञान, आत्म रक्षा के तरीके पढ़ाया जाय। उन गैर सरकारी शिक्षा संस्थानों को तुरन्त प्रभाव से बन्द करवा दिया जाय जो भारतीय संस्कृति संस्कार और इतिहास को गलत तरीके से पढ़ाते हैं इस पर सरकार को विशेष कानून बनाना होगा। ❑

विकसित भारत का निर्माण

डॉ. भारती गुप्ता

सहायक प्रोफेसर,
पर्यटन और यात्रा प्रबंधन
विभाग, केंद्रीय
विश्वविद्यालय, जम्मू

जब किसी परिवर्तन का उद्देश्य कुछ अच्छा होता है, तो उपलब्धियों की वर्तमान स्थिति की जाँच और विश्लेषण करने की आवश्यकता होती है, वांछित स्थिति, वर्तमान और वांछित के बीच के अंतर का विश्लेषण किया जाता है और अंतर को पाटने के लिए रणनीतिक कार्यों की योजना बनाई जाती है। समय-समय पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के विभिन्न आह्वानों का विश्लेषण किया जाए तो भारत को एक विकसित राष्ट्र के रूप में साकार करने की उनकी चिंता, अंतर्दृष्टि और व्यवस्थित दृष्टिकोण से कोई भी मंत्रमुग्ध हो सकता है। यह सच है कि 1947 से अब तक भारत ने 1947 की सामाजिक-आर्थिक-वैज्ञानिक स्थिति के मामले में प्रगति की है लेकिन प्रगति की गति प्रशंसनीय नहीं है। उदाहरण के लिए, सिंगापुर जैसा देश भी ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अधीन था। यह 1965 में सिंगापुर गणराज्य बना, जो भारत की स्वाधीनता के 19 साल बाद का समय है। 1990 के दशक तक, सिंगापुर अत्यधिक विकसित मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के साथ दुनिया के सबसे समृद्ध देशों में से एक बन गया था। यह अब एशिया में उच्चतम प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद है, जो दुनिया में 7वें स्थान पर है, और यह संयुक्त राष्ट्र मानव विकास सूचकांक पर 9वें स्थान पर है। क्या यह तुलना इस बारे में प्रश्न नहीं करती कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद से भारत क्या कर रहा था? कई गहरे विश्लेषणात्मक कारण हो सकते हैं जो सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक कारणों से जुड़ी एक लंबी सूची बना सकते हैं, लेकिन भारत के राजनीतिक इतिहास को जानने वाले एक नौसिखिए को यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्वतंत्रता के बाद का नेतृत्व विभाजनकारी राजनीति से ऊपर नहीं उठ सका। वोट बैंक आधारित राजनीति के लिए जातिगत चेतना और तुष्टीकरण का दृष्टिकोण देश की सुस्त प्रगति के लिए जिम्मेदार रहा है।

अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण नेतृत्व की भूमिका में एक व्यक्ति किसी संस्था, समूह या राष्ट्र को बना या बिगाड़ सकता है। और इसका असर भारत पर भी पड़ा है। स्वतंत्रता के बाद भारत को सही नेता के लिए, जिसके पास न केवल दूरदृष्टि हो बल्कि सूक्ष्म और वृहद स्तरों पर कार्य योजना भी हो, बहुत लंबा इंतजार करना पड़ा। दीर्घ काल खंड के बाद नरेंद्र मोदी ही ऐसे नेता हुए हैं जो जाति और धर्म आधारित वोट बैंक की राजनीति से ऊपर उठकर अपनी भूमिका निभा रहे हैं, और "सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास और सबका प्रयास" में विश्वास रखते हैं। प्रधानमंत्री मोदी ही विकसित भारत के लक्ष्य के तहत समावेशी विकास की बात करते हैं।

विकसित भारत उनके लिए सपना नहीं है। यह लक्ष्य निर्धारण है जिसे एक निश्चित अवधि में पूरा किया जाना है और

नए भारत की अडिग नींव रखने के लिए एक राष्ट्रीय उत्सव के रूप में मनाए जा रहे पर्दा उठाने वाला कार्यक्रम 'आजादी का अमृत महोत्सव' है। यह उत्सव 12 मार्च 2021 को अहमदाबाद में नरेंद्र मोदी द्वारा, उसी दिन साबरमती आश्रम से 21-दिवसीय दांडी मार्च को हरी झंडी दिखाकर शुरू किया गया था। अहमदाबाद के अलावा, उत्सव उन शहरों में भी शुरू किया गया था जो स्वतंत्रता संग्राम के उल्लेखनीय केंद्र थे। जैसी कि पंजाब में जलियांवाला बाग, अहमदाबाद में साबरमती आश्रम, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में सेलुलर जेल आदि।

उनके द्वारा निर्धारित की गई अवधि आजादी के 75वें वर्ष (15 अगस्त 2022) से लेकर 2047 में पड़ रही आजादी की शताब्दी तक है। इस अवधि को पीएम ने 'अमृत काल' का नाम दिया है। वैदिक ज्योतिष के अनुसार, 'अमृत काल' नया उद्यम शुरू करने के लिए सही समय का संकेत है।

केंद्रीय वाणिज्य और उद्योग मंत्री पीयूष गोयल के बयान से एक विकसित राष्ट्र में बदलने का दृढ़ विश्वास महसूस किया जा सकता है। उनके कथन के अनुसार भारतीय उद्योग परिसंघ (CII) ने अनुमान लगाया है कि 2047 में भारत 35-45 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर की अर्थव्यवस्था होगी। इससे देश को विकसित राष्ट्रों की लीग में ले जाना संभव होगा। यह उनके द्वारा दक्षिणी कैलिफोर्निया के व्यापारिक समुदाय को संबोधित करते हुए कहा गया था, जब उनकी पहली इंडो-पैसिफिक इकोनॉमिक फ्रेमवर्क (IPEF) मंत्रिस्तरीय बैठक की यात्रा थी।

नए भारत की अडिग नींव रखने के लिए एक राष्ट्रीय उत्सव के रूप में मनाए जा रहे पर्दा उठाने वाला कार्यक्रम 'स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव' है। यह उत्सव 12 मार्च 2021 को अहमदाबाद में नरेंद्र मोदी द्वारा, उसी दिन साबरमती आश्रम से 21-दिवसीय दांडी मार्च को हरी झंडी दिखाकर शुरू किया गया था। अहमदाबाद के अलावा, उत्सव उन शहरों में भी शुरू किया गया था जो स्वतंत्रता संग्राम के उल्लेखनीय केंद्र थे। जैसी कि पंजाब में जलियांवाला बाग, अहमदाबाद में साबरमती आश्रम, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में सेलुलर जेल आदि।

यह त्योहार भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक मान्यता के संबंध में प्रगतिशील हर चीज को ध्यान में रखता है। हिंदी वाक्यांश 'आजादी का अमृत महोत्सव' का अर्थ है 'स्वतंत्रता का अमृत'। इस त्योहार को मनाने का उद्देश्य स्वतंत्र भारत के 75 वर्ष और स्वतंत्रता आंदोलन, इसके लोगों, संस्कृति और उपलब्धियों के गौरवशाली इतिहास को मनाने और उसके द्वारा देश के लोगों में देशभक्ति की चेतना को बढ़ाने के लिए है।

अमृत महोत्सव के पांच स्तंभ इस प्रकार हैं -

1. Freedom Struggle : यह विषय उन गुमनाम नायकों की कहानियों को जीवंत करने में मदद करता है जिनके बलिदान ने स्वतंत्रता को हमारे लिए एक वास्तविकता बना दिया है और 15 अगस्त 1947 की ऐतिहासिक यात्रा में मील के पत्थर, स्वतंत्रता आंदोलनों आदि का भी पुनरावलोकन करता है।

2. Ideas@75 : यह विषय उन विचारों और आदर्शों से प्रेरित कार्यक्रमों और घटनाओं पर केंद्रित है जिन्होंने हमें आकार दिया है और अमृतकाल के माध्यम से हमारा मार्गदर्शन करेंगे।

3. Resolve@ 75 : यह विषय हमारी मातृभूमि की नियति को आकार देने के हमारे सामूहिक संकल्प और दृढ़ संकल्प पर केंद्रित है।

4. Action@75 : यह नीतियों को लागू करने और प्रतिबद्धताओं को पूरा करने के लिए उठाए जा रहे कदमों पर प्रकाश डालता है।

5. Achievements@75 : यह विषय 5000 से अधिक वर्षों के प्राचीन इतिहास की विरासत के साथ 75 साल पुराने स्वतंत्र देश के रूप में विभिन्न क्षेत्रों में विकास और प्रगति को दर्शाता है।

Theme 2.0 के तहत, पी.एम.मोदी ने हाल ही में पंच प्राण नामक एक नया ढांचा दिया है। इस पंच प्राण फ्रेमवर्क में संबंधित विषयों के साथ पाँच योजनाएँ हैं। ढाँचा इस प्रकार है -

प्राण 1 : विकसित भारत का लक्ष्य

इसमें 04 नए विषय हैं। महिलाएँ और बच्चे; समावेशी विकास; स्वास्थ्य और कल्याण; आदिवासी सशक्तिकरण।

प्राण 2 : औपनिवेशिक मानसिकता को दूर करें।

इसमें आत्मनिर्भर भारत का विषय है। इसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था, बुनियादी ढाँचे, प्रणाली, जीवंत जनसांख्यिकी और मांग जैसे विभिन्न व्यापक क्षेत्रों में प्रगतिशील कार्य करना है।

प्राण 3 : अपनी जड़ों पर गर्व करें।

विषय सांस्कृतिक गौरव है -

प्राण 4 : एकता

इसकी थीम अनेकता में एकता है।

प्राण 5 : नागरिकों में कर्तव्य की भावना।

इस्सके थीम हैं पानी; और स्थिरता/पर्यावरण के लिए जीवन शैली (LiFE)

आजादी का अमृत महोत्सव और अमृत काल विभिन्न विषयों पर ध्यान केंद्रित करते हुए वर्तमान स्थिति की गहरी अनुभूति, 25 वर्षों के अमृत काल के दौरान पाटने की व्यवस्था और 2047 में विकसित भारत के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रतिनिधित्व करते हैं। ❑

भारतीय धर्म - संस्कृति में संस्कार पद्धति

डॉ. आदित्य कुमार गुप्त
सह-आचार्य,
हिन्दी, राजकीय कला महाविद्यालय,
कोटा (राज.)

भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीन एवं महान संस्कृति है। इसके अजस्र प्रवाह में शनैः शनैः जिन अवधारणाओं ने एक निश्चित स्वरूप ग्रहण कर मानव जीवन और समाज को प्रभावित किया और हिन्दू धर्म की अनिवार्य अंग बन गई, उनमें संस्कार की अवधारणा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। संस्कृति संस्करण (भलीभाँति बनाना) की प्रक्रिया है और संस्कार उसका साधन। तंत्रवार्तिक के अनुसार संस्कार वे क्रियायें हैं जो योग्यता प्रदान करती हैं- योग्यता चादधाना क्रिया संस्कार इत्युच्यन्ते। इसी तरह का मत जैमिनी सूत्र के भाष्यकार ने भी व्यक्त किया है- ''संस्कारो नाम स भवति यस्मिन जाते पदार्थों भवति योग्यः कस्मिचिदर्थस्य'' अर्थात् संस्कार वह है जिसके होने से पदार्थ (या व्यक्ति) किसी कार्य के योग्य बन जाता है। संस्कार विवेचन की दृष्टि से सूत्र साहित्य सर्वाधिक समृद्ध हैं। संस्कार व्युत्पत्ति एवं अर्थ-संस्कार शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। इसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है- सम्यक् बनाना या विशुद्ध बनाना।

संस्कार शब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। इसमें मानव जीवन के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त विविध धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक मानसिक एवं बौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठान आते हैं जिनसे वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य बन सके। सनातन धर्म के आदि स्रोत 'ऋग्वेद' में गर्भाधान, विवाह तथा अन्त्येष्टि संस्कार के मंत्र मिलते हैं। वेदों के व्याख्या रूप 'ब्राह्मण' ग्रन्थों में प्रत्यक्ष रूप से संस्कारों का विवेचन नहीं मिलता है। परंतु उपनयन संस्कार से जुड़ी अनेक विधियों का विवेचन अवश्य मिलता है। संस्कार विवेचन की दृष्टि से साहित्य सर्वाधिक समृद्ध सूत्र है।

संस्कार प्रयोजन–संस्कार अनेक हैं और उनके प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न हैं। गृहसूत्रों में संस्कार विवेचन प्रायः विवाह से प्रारम्भ हुआ है। अतः संस्कार वैवाहिक जीवन के दायित्वों के प्रतीक माने जाते थे। इसीलिए यह कहा गया है कि जो माता-पिता अपनी संतान के संस्कार नहीं करते, वे जनक मात्र है तथा पशु सदृश हैं। इस संदर्भ में मनु का कथन दृष्टव्य है- गर्भाधान तथा अन्य संस्कारों की क्रियायें शरीर को शुद्ध करती हैं तथा इहलोक और परलोक में भी पाप से विमुक्त कराती हैं। विशिष्ट संस्कारों के किए जाने से व्यक्ति के जन्मगत दोष नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह पाराशर स्मृति में लिखा है –

चित्र कर्म यथाऽनकैरं
गैरुन्मीलयते शनैः।
ब्रह्मण्यमपि तद्वत्स्यात्
संस्कारैविधिपूर्वेकैः।।

अर्थात् जिस प्रकार कोई चित्र सुन्दर रंगों के समायोजन से शनैः शनैः अपने सौन्दर्य को उद्घाटित करता है उसी प्रकार विधि-विधान पूर्वक किये गये संस्कारों से व्यक्ति में ब्रह्मण्य प्रतिष्ठित होता है।

संस्कारों की संख्या- संस्कारों की संख्या के विषय में धर्मशास्त्री एक मत नहीं हैं। गौतम ने चालीस संस्कारों का उल्लेख किया है। 'आश्वालयन गृहसूत्र' में ग्यारह, पारस्कर गृह्यसूत्र में तेरह तथा वैखानस गृहसूत्र में अठारह संस्कारों का वर्णन है। संस्कारों की बहुमान्य संख्या 16

है – गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, कर्ण भेद, अन्नप्राशन चौल, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ एवं संन्यास तथा अन्त्येष्टि। उक्त संस्कारों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

1. गर्भाधान संस्कार – मानव जीवन का यह प्रथम संस्कार है। जिस कर्म से मनुष्य स्त्री में अपना बीज स्थापित करता है, उसे गर्भाधान कहा गया है। जैसा कि 'पूर्वमीमांसा' में लिखा है– गर्भ सन्धार्यते येन कर्मणा तद् गर्भाधानमित्यनुगतार्थ कर्म नामधेयम्। गर्भाधान के लिए ऋतुकाल उपयुक्त माना गया है। ऋतु स्नान की चौथी रात्रि से सोलहवीं रात्रि का समय गर्भधान के लिए सर्वाधिक उचित है। गर्भाधान सोद्देश्य है जो प्रजोत्पत्ति अर्थात् संतानोत्पादन के निमित्त ही किया जाता है। पितृ ऋण से मुक्त होना इसका मूल उद्देश्य है।

2. पुंसवन संस्कार – इस संस्कार का उल्लेख सभी गृहसूत्रों में मिलता है। गर्भ विनिश्चय के पश्चात् यह संस्कार इस भावना से किया जाता है कि गर्भ रूप संतति के शारीरिक–मानसिक विकास की कल्पना से कुछ धार्मिक आयोजन अनुष्ठान किये जाएँ। यह गर्भवती माताओं द्वारा स्वस्थ तथा बुद्धिमान संतति की कामना से किया जाने वाला धार्मिक संस्कार है।

3. सीमन्तोन्नयन संस्कार – गर्भस्थ शिशु का यह तीसरा संस्कार है। यह संस्कार गर्भिणी स्त्री को प्रसन्न रखने के उद्देश्य से किया जाता है। गर्भिणी के प्रसन्न रहने से गर्भस्थ शिशु निश्चय ही प्रसन्न रहेगा। 'सीमन्तोन्नयन' का अर्थ है बालों को ऊपर करना अर्थात् केश प्रसाधन। इस संस्कार में पति स्वयं गर्भवती के केशों में सीमन्त (मांग) निकालता है । वीरमित्रोदय में लिखा है– 'सीमन्त उन्नीयते यस्मिन् कर्मणि तत् सीमन्तो नयनमिति कर्मनामधेयम्'। अर्थात् केशों के सीमन्त (मांग) का उन्नयन जिस कर्म से किया जाता है, उसे सीमन्तोन्नयन कहा गया है। सीमन्तोन्नयन का सम्बन्ध दोहद (गर्भवती की इच्छा को पूर्ण करना) से भी था। यह संस्कार प्रायः किसी पुरुष संज्ञक नक्षत्र के समय सम्पन्न किया जाता था। गर्भिणी स्त्री को उक्त अवसर पर उपवास रखना होता था । इसके अन्तर्गत पाँच कार्य किये जाते थे। 1. मातृपूजा 2. नान्दीश्राद 3. प्राजापत्य आहुति 4. व्याहृत्यादान 5. सीमन्त कर्म। यह संस्कार गर्भस्थिति के चौथे या पाँचवे मास में किया जाता था।

4. जात कर्म संस्कार – बालक के जन्म समय नाभिच्छेदन से भी पूर्व इस संस्कार को किया जाता था। यदि किसी कारण वश उस समय यह संस्कार न किया जा सके तो जन्म के दस दिन के भीतर कर लेना चाहिए। इस संस्कार के सम्बन्ध में वीरमित्रोदय में लिखा है–

प्राडनाभिवर्धनात्पुंसो जात कर्म विधीयते।
मन्त्रतः प्राशनञ्चास्य हिरण्यमपुसर्पिषाम्।।

अर्थात् नाभिवर्धन के पूर्व जात कर्म किया जाता है। नाभिवर्धन के पश्चात् शिशु को मंत्र पूर्वक सोने की श्लाका से घृत मिश्रित मधु पिलाया जाता था। इस संस्कार का प्रारम्भ पिता के द्वारा उत्तम स्वास्थ्य तथा शत वर्ष जीवन की कामना एवं तीव्र मेघा सम्पन्न होने की भावना से किया जाता था। इस संस्कार के प्रमुख तीन उद्देश्य थे। 1. मेधाजनन 2. आयुष्य एवं 3. सशक्त जीवनी शक्ति।

5. नामकरण संस्कार – भारतीय धर्मशास्त्रों में नामकरण को एक महत्त्वपूर्ण संस्कार माना गया है। यह सम्पूर्ण लौकिक व्यवहार कल्याण और भाग्योदय का हेतु है। नामकरण के महत्त्व के सम्बन्ध में वृहस्पति का मत है–

नामाखिलस्य व्यवहार हेतुः
शुभावंह कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्ति लभते मनुष्यस्ततः
प्रशस्तं खलु नामकर्म।।

वृहदारण्यक उपनिषद में नाम की महत्ता बताते हुए कहा गया है– मरने के बाद मनुष्य क्या नहीं छोड़ता? नाम से अनन्त लोकों को जीतता है। नाम में ही सारे कार्य होते हैं। शास्त्रों के अनुसार नामकरण संस्कार जन्म के दसवें दिन, ग्याहरवें दिन, बारहवें दिन, सौ रातों या एक वर्ष के उपरान्त किसी भी दिन किया जा सकता है। प्रायः सभी शास्त्रकारों के मत में लड़के का नाम दो चार या सम संख्या के अक्षरों वाला और लड़की का नाम तीन अक्षरों वाला होना चाहिए। इस संस्कार से पहले माता–पिता स्नान करते हैं तब माता अपने शिशु को नवीन वस्त्र पहनाकर हाथों में सौपती है। पिता प्रजापति, देवताओं, अग्नि, सोम आदि को हवि प्रदान करता हुआ शिशु की श्वास का स्पर्श करता है तथा शिशु के कान में नाम का उच्चारण करता है।

6. निष्क्रमण संस्कार – जन्म के चौथे मास में यह संस्कार किया जाता है– चतुर्थे मासि कर्तव्य शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्। मनु/1/34/7 शिशु को प्रथम बार घर से बाहर लाने का संस्कार ही निष्क्रमण है। गृह्यसूत्रों के अनुसार यह संस्कार माता–

भारतीय संस्कृति में संस्कारों की योजना एक विशिष्ट प्रयोजन से की गई है। जन्म से मृत्यु तक मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक तथा मानसिक विकास तथा परिष्कार के लिए संस्कारों का विधान किया गया है। ये संस्कार मनुष्य को आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नति की और अग्रसारित करते हैं। संस्कारों का मुख्य प्रयोजन दोष सम्मार्जन तथा श्रेय और प्रेय की प्राप्ति है। बहुत से धर्म शास्त्रों में वानप्रस्थ एवं संन्यास को संस्कारों के नहीं गिना गया है। फिर भी इतना तो निश्चित है वानप्रस्थ और संन्यास ग्रहण करते समय कुछ विशेष क्रियाएँ सम्पादित की जाती थी।

पिता द्वारा सम्पन्न किया जाता है। यह घर के आगन में जहाँ सूर्य दिखाई देता हो करना अनिवार्य था। आंगन को मिट्टी या गोबर से लीप कर स्वस्तिक बनाया जाता था। धान्य विकीर्ण कर वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ शिशु को बाहर लाया जाता था।

7. अन्नप्राशन संस्कार - विकासशील शिशु की उदरपूर्ति जब माता के दूध से नहीं हो पाती तब अन्य भोजन की जरुरत ही इस संस्कार की जननी है। आश्वालयन गृह्यसूत्र में छठे मास में अन्नप्राशन का उल्लेख मिलता है - 'षष्ठे मासस्यन्नप्राशम्।' आयुर्वेद भी शिशु को छठे मास में पथ्य देने की बात कहता है। प्रथम बार जो भोजन दिया जाता था वह मधु घी अथवा भात होता था।

8. चूड़ा कर्म संस्कार – इस संस्कार को छेदन कर्म संस्कार भी कहा जाता है। चूड़ा कर्म का तात्पर्य केश छेदन से है। सिर के समस्त बाल काट कर सिर पर चूड़ा (शिखा) मात्र छोड़ने के कारण इस संस्कार का नाम चूड़ाकर्म पड़ा। यह संस्कार दीर्घायु, सौन्दर्य लाभ व स्वास्थ्य की दृष्टि से किया जाता था। ग्रह्यसूत्रों के अनुसार चूड़ाकर्म प्रथम वर्ष के अन्त में या तृतीय वर्ष की समाप्ति पर करना चाहिए।

9. कर्णभेद संस्कार - बोधायन गृह्यसूत्र के अनुसार यह संस्कार जन्म के सातवें या आठवें मास मे किया जाना चाहिए । सुरक्षा एवं सौन्दर्य की दृष्टि से यह संस्कार किया जाता था। चिकित्सा शास्त्र के अनुसार कान को विशिष्ट स्थल पर छेद देने से आन्त्रवृद्धि रोग (हर्निया) नहीं होता। पिता द्वारा जिस सूचि से कर्ण भेद किया जाता था वह सोने, चाँदी या ताँबे की होती थी।

10. उपनयन संस्कार - वर्णत्रय के लिए यह संस्कार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। जिस बालक का उपनयन संस्कार नहीं होता था वह वर्णाश्रम के समस्त कर्तव्यों से बहिष्कृत माना जाता था। 'उपनयन' का शाब्दिक अर्थ है- समीप ले जाना। बच्चे को शिक्षा के लिए आचार्य के समीप ले जाना 'उपनयन' कहलाता है। आचार्य समीप में आये बालक को उपनीत बना लेता है। इस संस्कार से ही ब्रह्मचर्य आश्रम प्रारम्भ होता था। आश्वलायन गृह्य में 8, 11, 12वें वर्ष में क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के उपनयन के लिए उचित सूत्र बताया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों में इसका उल्लेख मिलता है। याज्ञवल्क्य ने लिखा है-

उपनीय गुरु शिष्यं
महाव्याहृति पूर्वकम्।
वेदमध्यापयेदेनं
शौचाचारॉश्च शिक्षयेत्।।

अर्थात् महाव्याहृतियों से शिष्य का उपनयन कर गुरु उसे वेद, आचार एवं शील की शिक्षा प्रदान करे। कालान्तर में उपनयन (जनेऊ) धारण तक सीमित रह गया।

11. वेदारम्भ संस्कार – यह संस्कार उपनयन संस्कार के पश्चात् उसी दिन या उससे अगले दिन किया जाता था। मनु के अनुसार आचार्य उपनयन के बाद शिष्य को शौच, आचार, अग्निहोत्र और संध्या पूजा के नियमों की शिक्षा देता है। अध्ययन के समय गुरु पूर्व या उतर की ओर मुँह करके और शिष्य उसके दाहिने उतराभिमुख बैठता है। वेदारम्भ शुभ मूहर्त्त का निश्चय सूर्य के उत्तरायण काल में करना होता था। इस संस्कार के दिन बालक को स्नान कराकर नवीन वस्त्र पहनाये जाते थे। आयु के पाँचवें या सातवें वर्ष में यह संस्कार होता था।

12. समावर्तन संस्कार - अध्ययन समाप्ति थे बाद जब शिष्य गुरु गृह से अपने घर लौटने को होता है, तब यह संस्कार गुरु के द्वारा किया जाता था। शिष्य गुरु को आमन्त्रित कर अपने ब्रह्मचारी जीवन को समाप्त करने की आज्ञा मांगता था और गुरुदक्षिणा देकर आचार्य को संतुष्ट करता था। स्नान करके शिष्य अपने ब्रह्मचारी जीवन के अभिन्न अंग मेखला, उत्तरीय, कौपीन, दण्ड आदि त्याग देता था। नवीन वेश-भूषा धारण कर स्नातक रथ या हाथी पर बैठकर विद्वत् परिषद् के सम्मुख आता और गुरु परिचय कराने के बाद सत्यं वद। धर्मं चर। 'स्वाध्यायन्मा: प्रमद:' आदि का उपदेश देता था।

13. विवाह संस्कार – विवाह को सब संस्कारों में प्रमुख माना गया है। गृह्यसूत्रों में प्राय: संस्कारों का वर्णन विवाह से ही हुआ है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जब तक व्यक्ति विवाह कर संतानोत्पत्ति नहीं करता वह पूर्ण नहीं है। अपत्नीक पुरुष को यज्ञ का अधिकार नहीं था। आश्रमव्यवस्था के पालनार्थ ब्रह्मचर्य आश्रम के पश्चात् स्त्री-पुरुष को विवाह करना चाहिए। 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। मनु ने विवाह के आठ प्रकार बताये हैं ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर, गान्धर्व राक्षस, पैशाच। इनमें प्रथम चार प्रशस्त एवं अंतिम चार निंद्य माने है –

1. ब्रह्म विवाह विद्वान एवं सदाचारी वर का यथायोग्य सम्मान कर विधिवत् कन्यादान करना। 2. दैव विवाह यज्ञ सम्पादन करते समय ऋत्विक को प्रसन्नता पूर्वक विधिवत् कन्यादान कर देना। 3. आर्ष विवाह गुणवान वर से एक या दो गो युगल लेकर विधिवत् तुम दोनों साथ – साथ धर्माचारण करो। यह कन्या दान कर देना। 4. प्रजापत्य विवाह कह कर वर को विधिवत कन्यादान कर देना। कन्या को धन देकर विवाह करना । 5. गान्धर्व विवाह। 6. आसुर विवाह कन्या के सम्बन्धियों या एक दूसरे के प्रति आकर्षित होकर स्वेच्छा से विवाह करना। 7. राक्षस विवाह कन्यापक्ष के लोगों को घायलकर या मारकर कन्या का बल पूर्वक हरण करके ले जाना। 8. पैशाच विवाह सोई हुई, मत्त-प्रमत्त (पागल) कन्या से बलपूर्वक मैथुन कर पत्नी बनाना। देश, स्थान, कुल भेद से विवाह विधि सर्वत्र एक सी न थी। धर्म-शास्त्रों ने मधुपर्क, वर-वधू का परस्पर समीक्षण, कन्यादान, पाणिग्रहण, लाजाहोम, अश्वारोहण, सप्तपदी और सुमंगली को विवाह संस्कार के लिए आवश्यक माना है।

14. वानप्रस्थ – श्वेत केश हो जाने पर तथा पुत्र के पुत्र हो जाने पर घर के सभी उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जाने पर तपोवन की ओर अग्रसर होने की भूमिका तैयार करने हेतु यह संस्कार अपेक्षित था। इस संस्कार के अवसर पर विधिवत् यज्ञ करके वानप्रस्थी अपने सगे सम्बनिधयों से विदा लेकर यज्ञादि सामग्री साथ लेकर तपोवन की ओर चला जाता था।

15. संन्यास आश्रम – आयु के चौथे भाग में संन्यास लेने की परम्परा थी। सभी कामनाओं का परित्याग करना संन्यास कहलाता है। 'काम्यानां कर्मणा न्यास संन्यासं कवयो: विदु: (गीता)'। इस अवसर पर दाढ़ी, मूँछ कटवाकर विशेष मन्त्रों के साथ स्नान किया जाता है फिर यज्ञ कर काषाय वस्त्र धारण कर तथा हाथ में भिक्षा पात्र लेकर लोक कल्याण की भावना से परिव्राजक बन कर चारों ओर पृथ्वी पर विचरण करने निकल जाता है।

16. अन्त्येष्टि संस्कार – यह संस्कार मानव जीवन का अंतिम संस्कार है, जो मरणोपरान्त परिवार के व्यक्तियों के द्वारा मृतक के प्रति किया जाता है। शव का यह संस्कार वैदिक काल से ही प्रचलित है। इस अवसर पर वैदिक मन्त्रों से चिता पर आहुतियाँ दी जाती हैं और भगवान से आत्मा की मुक्ति के लिए प्रार्थना की जाती है। 'ऋग्वेद' एवं 'अर्थवेद' तथा 'तैतरीय आरण्यक' में अन्त्येष्टि संस्कार का वर्णन मिलता है। अन्त्येष्टि क्रिया में शव स्नान, शव को श्मशान में ले जाना, शव को वस्त्र परिधान करना, मृतक को विदाई, चिता जलाना, अशौच निवारणार्थ स्नान करना आदि आते हैं। धर्म सूत्रों के काल में अंत्येष्टि संस्कार के चार अंग प्रमुख माने जाने लगे। 1. शवदाह 2. प्रेतकर्म 3. सपिण्डीकरण 4. श्राद्ध।

निष्कर्षत : कहना यह है कि भारतीय संस्कृति में संस्कारों की योजना एक विशिष्ट प्रयोजन से की गई है। जन्म से मृत्यु तक मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक तथा मानसिक विकास तथा परिष्कार के लिए संस्कारों का विधान किया गया है। ये संस्कार मनुष्य को आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नति की ओर अग्रसारित करते हैं। संस्कारों का मुख्य प्रयोजन दोष सम्मार्जन तथा श्रेय और प्रेय की प्राप्ति है। बहुत से धर्म शास्त्रों में वानप्रस्थ एवं संन्यास को संस्कारों में नहीं गिना गया है। फिर भी इतना तो निश्चित है वानप्रस्थ और संन्यास ग्रहण करते समय कुछ विशेष क्रियाएँ सम्पादित की जाती थी। अत: ये संस्कार ही हैं। गुह्य सूत्रों में इन दो की चर्चा नहीं मिलती है। वहाँ व्रत एवं केशान्त संस्कार का वर्णन मिलता है। ❑

भारतीय 'धर्मशास्त्र व नीतिशास्त्र' में निहित सार्वकालिक तत्त्व

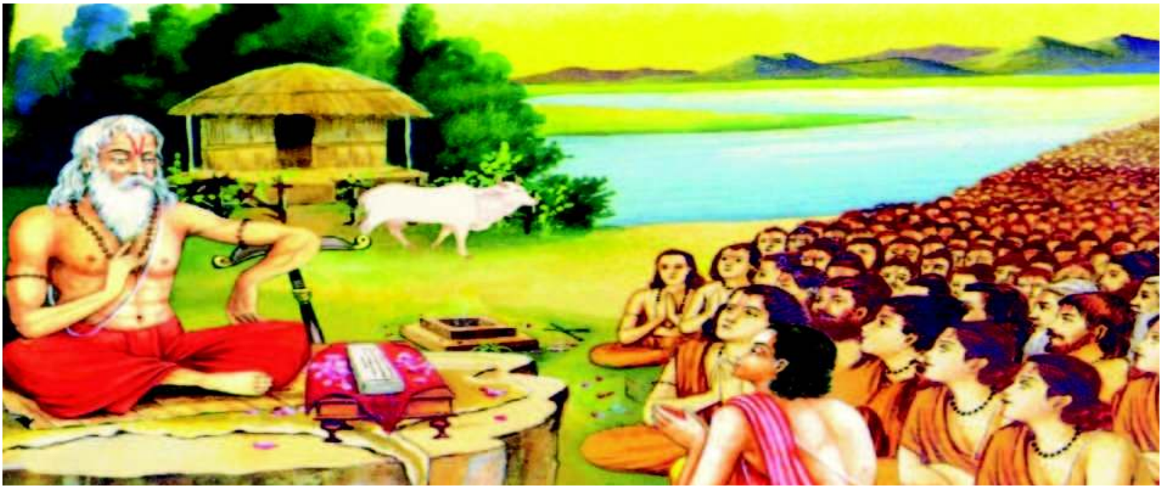

डॉ. प्रियंका कुमारी
स्नातक प्रशिक्षित शिक्षिका, झारखण्ड

धर्मशास्त्र उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें राजा-प्रजा के अधिकार, कर्तव्य, सामाजिक आचार-विचार, व्यवस्था, वर्णाश्रम धर्म, नीति, सदाचार और शासन सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था का वर्णन होता है।

संस्कृत के काव्य साहित्य की कुछ कृतियों में नीति विषयक सूक्तियों की प्रधानता तथा उपदेशात्मक सूक्तियों भी सम्मिलित हैं। इन पर धर्म और दर्शन दोनों का प्रभाव है।

सामाजिक सद्भाव, मैत्री भावना का निर्माण, धर्म, दर्शन, सदाचार और राजनीति जैसे गम्भीर विषयों का सरल काव्यमयी भाषा में प्रतिपादन महत्त्वपूर्ण विषय हैं। ऐसे ग्रन्थों को नीतिशास्त्र की श्रेणी में रखा जाता है। उदाहरणार्थ रामायण धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र दोनों है।

धर्मशास्त्र या नीतिशास्त्र के प्रमुख चार अंग या विषय हैं। प्रथम अंग आचार विषयक है तो द्वितीय व्यवहार सम्बन्धी। तीसरा विषय प्रायश्चित और चौथा कर्मफल। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों के समुचित निर्वाह की विधियों का विशद् विश्लेषण करना भी धर्मशास्त्र का ही विषय है। यहाँ संक्षेप में इन्हीं चारों मुख्य विषयों पर चर्चा करना आवश्यक है -

(क) आचार विषयक विषय - धर्मशास्त्र की आत्मा आचार विषयक विषयों का वर्णन करना है। मनुष्य को अच्छा आचरण करना चाहिए। सदाचारी व्यक्ति संसार में सफलता प्राप्त करता है, जबकि दुराचारी पुरुष इस संसार में निंदित, सदैव दुःख का भागी, रोगी और अल्पायु होता है। मनुस्मृति में भी कहा गया है -

> **सदाचारी व्यक्ति संसार में सफलता प्राप्त करता है, जबकि दुराचारी पुरुष इस संसार में निंदित, सदैव दुःख का भागी, रोगी और अल्पायु होता है। धर्मशास्त्र कहता है कि बालक की हत्या करने वाले, कृतघ्न, शरणागत की हत्या करने वाले और स्त्री की हत्या करने वाले के साथ प्रायश्चित द्वारा इसके शुद्ध हो जाने पर भी संसर्ग न करें।**

दुराचारो हि पुरुषो
लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं
व्याधितोऽल्पायुरेव च।।

आचार सम्बन्धी अनेक बातें धर्मशास्त्र में कही गई हैं। अभिवादन के कारण, फल, विधि, प्रत्याभिवादन विधि आदि बातें इसी के अन्तर्गत आती हैं। अभिवादन के फल के बारे में कहा गया है -

अभिवादनशीलस्य
नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते
आयुर्विद्यायशोबलम्।।

स्त्रियों के प्रति आचार कहता है -

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते
रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते
सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

धर्मशास्त्र में आचार विषयक अनगिनत बातें संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं। माता-पिता, गुरु के प्रति कर्तव्य, मित्र के प्रति कर्तव्य, गुरु-शिष्य के कर्तव्य आदि पति-पत्नी के कर्तव्य, पिता-पुत्र के कर्तव्य, आदि अनेक बातें इसके अन्तर्गत आती हैं।

(ख) व्यवहार विषयक विषय - इस भाग के अन्तर्गत धर्मशास्त्र में ऋण

लेना, धरोहर रखना, किसी वस्तु या भूमि आदि का स्वामी न होने पर भी उसे बेच देना, अनेक व्यक्तियों (व्यापारियों) का मिलकर संयुक्त रूप से कार्य करना, दान आदि में दी गई सम्पत्ति या किसी वस्तु को क्रोध, लोभ या अपात्रता के कारण वापस ले लेना, नौकरों का वेतन या मजदूरों की मजदूरी नहीं देना, पूर्व निर्णीत व्यवस्था अर्थात् सन्धिपत्रादि को नहीं मानना, क्रय-विक्रय में विवाद उपस्थित होना, स्वामी तथा पालक (रखवाली करने वाले) में परस्पर विवाद होना, सीमा के विषय में विवाद होना, दण्ड-दारूण्य अर्थात् अत्यधिक मार-पीट करना, वाक्पारूस्य अर्थात् अनधिकार गाली आदि देना, चोरी करना, अति साहस करना अर्थात् डाका डालना, आग लगाना आदि, स्त्री का पर पुरुष के साथ सम्भोग आदि करना, स्त्री-पुरुष का धर्म, पैतृक धन सम्पत्ति या भूमि आदि का बँटवारा करना, जुआ खेलना या बाजी लगाकर पशु-पक्षी को लड़ाना ये स्थान व्यवहार अर्थात् मुकदमे की स्थिति में कहे गये हैं। इन परिस्थियों का निपटारा कैसे किया जाय? क्या दण्ड विधान है? इन समस्त विषयों का वर्णन व्यवहार विषयक विषय के अन्तर्गत आते हैं। धर्मशास्त्र में इन विषयों का सम्यक् वर्णन मिलता है। राजा किस प्रकार का दण्ड दे इस पर भी विचार किया गया है। यथा -

धर्मशास्त्र या नीतिशास्त्र के प्रमुख चार अंग या विषय हैं। प्रथम अंग आचार विषयक है तो द्वितीय व्यवहार सम्बन्धी। तीसरा विषय प्रायश्चित और चौथा कर्मफल। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों के समुचित निर्वाह की विधियों का विशद् विश्लेषण करना भी धर्मशास्त्र का ही विषय है।

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्यात्
धिग्दण्डं तदन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु
वधदण्डमतः परम्।।

(ग) प्रायश्चित सम्बन्धी विषय - धर्मशास्त्र में प्रायश्चित सम्बन्धी विषयों पर भी व्यापक चर्चा की गयी है। मनुष्यों से जाने-अनजाने अपराध हो जाया करते हैं, उन्हें किस प्रकार प्रायश्चित का मौका मिले, इस बात का वर्णन इस भाग में किया गया है। प्रायश्चित करने के क्या नियम हैं, किस प्रकार प्रायश्चित किया जाना चाहिए आदि-आदि बातों की जानकारी धर्मशास्त्र के इस भाग का वर्ण्य-विषय है। किसके प्रायश्चित के बाद भी पाप से निवृति नहीं होती इसका भी विधान है। यथा बालक की हत्या करने वाला, कृतघ्न, शरणागत की हत्या करने वाला और स्त्री की हत्या करने वाला। इसके साथ प्रायश्चित द्वारा इसके शुद्ध हो जाने पर भी संसर्ग न करें, ऐसा मनुस्मृति में कहा गया है -

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च
विशुद्धानपि धर्मतः।
शरणागतहन्तृश्च न संवसेत्।।

(घ) कर्म-फल से सम्बन्धित विषय - धर्मशास्त्र में कर्म-फल से सम्बन्धित विषय का विशद् विवेचन किया गया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि मनुष्यों के कायिक, वाचिक तथा मानसिक कर्म शुभाशुभ फल देने वाले होते हैं और उनसे उत्पन्न होने वाली गतियाँ भी प्राप्त होती हैं। मनुष्य शुभ कर्मों से देव योनि को मिश्रित कर्मो से मनुष्य योनि को और अशुभ कर्मों से तिर्यग्योनि अर्थात् पशु, पक्षी, वृक्ष, लतादि योनि को प्राप्त करता है। इस भाग में हीं सत्त्व, तम, और रज गुण के कारण, प्रवृति तथा कर्म के फल का वर्णन मिलता है। कहा भी गया है -

तमसो लक्षणं कामो
रजसस्त्वर्थं उच्यते ।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः
श्रेष्ठय्यमेषां यथोत्तरम्।।

सात्विक देवत्व को, राजस मनुष्यत्व को और तामस तिर्यक्त्व को प्राप्त करते हैं। ये तीन गतियाँ मनुष्यों के कर्म के कारण प्राप्त होती हैं। कहा गया है कि परमात्मा सम्पूर्ण प्राणियों में शरीरों को आरम्भ करने वाली पंचमूर्तियों से व्याप्त होकर उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के द्वारा सदैव पहिये के समान संसारियों को सर्वदा बनाता रहता है। धर्मशास्त्र की विषय-वस्तु अत्यन्त व्यापक है। नीतिशास्त्रों, स्मृतिग्रन्थों आदि में न्यूनाधिक मात्रा में उपर्युक्त बातों का विवेचन और विश्लेषण किया गया है। निःसन्देह धर्मशास्त्र भारतीय संस्कृति के पोषक एवं भारत की सांस्कृतिक धरोहर हैं। ❑

'व्रज' से 'ब्रज' तक : एक भाव- यात्रा

डॉ. कृष्ण चन्द्र गोस्वामी 'विभास'
पूर्व सह-आचार्य एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, महारानी
श्रीजया महाविद्यालय,
भरतपुर (राज.)

'व्रज' क्या है ? जहाँ गौ विचरण करती हों; वह व्रज 'व्रजन्ति गावो यस्मिन्निति व्रज:। ऋग्वेद में मंत्र-द्रष्टा ऋषि ने कहा 'गवामय व्रजं वृधि' अर्थात् जो स्थान गौ-मय है; वही व्रज है। शुक्ल यजुर्वेद में कहा गया है 'यत्र गावो भूरि शृंगा अयास:' अर्थात् जिस स्थान पर शृंगों से सुशोभित असंख्य गायें सहज रूप से विचरण करती हों; वही व्रज है। तात्पर्य यह है कि पुण्य-भूमि भारतवर्ष में जब से संस्कृति ने नयनोन्मीलन किया है, तभी से 'व्रज' का सम्बन्ध गायों से, गौ- पालन से, गौ-चारण से और गोपालों से अत्यन्त सघन रहा है।

पौराणिक-काल में इन अर्थों को विस्तार मिला। श्रीमद्भागवत पुराण में व्रज गौ-चारण की भूमि तो है ही, साथ में; गौ-खिरक भी है और गौ-पालकों की बस्ती भी। वसुदेव के अनुरोध पर श्री गर्गाचार्य गोकुल पहुँचते हैं। वे यदुकुल के पुरोहित हैं। वसुदेव-रोहिणी के पुत्र (बल्देव जी) का नामकरण करना है। यह गोकुल 'व्रज' है - 'व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेव प्रचोदित:' किन्तु नन्द का 'व्रज' है; 'बस्ती' है। नन्द ने गर्गाचार्य जी से प्रार्थना की कि वसुदेव-रोहिणी के पुत्र का नामकरण अवश्य कीजिए, किन्तु साथ में, मेरे पुत्र का भी नामकरण करने की कृपा करें। गर्गाचार्य ने कहा 'नहीं, आप उत्सव करेंगे; मैं यदुकुल का पुरोहित हूँ - यह सर्वज्ञात है। अत: कंस आपके पुत्र में वसुदेव-पुत्र की संभावना देख सकता है; जो किसी भी दृष्टि से श्रेयस् नहीं है।' नन्द ने कहा 'नहीं, हम कोई उत्सव नहीं करेंगे। शोर-शराबा नहीं करेंगे। यह काम गुपचुप तरीके से गौ- खिरक में हो जाएगा।' भागवत में नन्द के शब्द हैं 'अलक्षितोऽस्मिन् रहसि मामकैरपि गोव्रजे।' यह 'गो-व्रज' गौ-खिरक है; गौ-शाला है। यह व्रज है; किन्तु नन्द के व्रज में; व्रज की सीमा में अवस्थित 'व्रज' है।

नन्द के इस व्रज के अनेक संकेत भागवत में हैं और अत्यन्त सुस्पष्ट हैं। हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में 'नन्द व्रज कुमारिकाएँ' यमुना स्नान और कात्यायनी का पूजन करती दृष्टिगोचर होती हैं। इसी तरह; ज्ञानोपदेश का अहं विगलित हो जाने के बाद मथुरा को लौटते हुए उद्धव जिनकी वन्दना करते हैं - 'वन्दे नन्द व्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णश:' वे स्त्रियाँ 'नन्द के व्रज की निवासिनी हैं; व्रज की गोपियाँ हैं।' यह नन्द का व्रज है; अत: नन्द के साथ ही यह स्थान-परिवर्तन भी करता है। नन्द गोकुल में हैं - तो गोकुल - 'व्रज' है जहाँ गर्गाचार्य पहुँचते हैं। किन्तु जब नन्द गोकुल को त्याग यमुना के

दूसरे तट पर यमुना, गोवर्द्धन और वृन्दावन का आश्रय ले लेते हैं तो वह 'व्रज' भी नन्द के साथ चला आता है। उद्धव श्रीकृष्ण की आज्ञा 'गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नी प्रीतिमावह। गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय।।' का पालन करते हुए जहाँ पहुँचते हैं; वह 'व्रज' गोकुल नहीं है। वह वृन्दावन और गोवर्द्धन के चतुर्दिक फैली वही पवित्र भूमि है जहाँ हम आज बैठे हैं; गोपी- उद्धव संवाद की साक्षी ज्ञानगूदरी के किनारे।

अब मैं आपका ध्यान भागवत में ही विद्यमान उस 'व्रज' की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ जहाँ 'व्रजस्त्रियाँ' तो हैं; किन्तु वह 'नन्द का व्रज' नहीं है। इस 'व्रज' को श्रीकृष्ण अपनी बाँसुरी के मनोहर स्वर से रचते हैं। पहला प्रसंग वेणुगीत का है; जहाँ शुकदेव जी ने परीक्षित से कहा 'इति वेणुरवं राजन् सर्वभूत मनोहरम्। श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वावर्णयन्तो ऽभिरेभिरे।।' और फिर प्रारंभ होता है - 'अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः ...' का सस्वर गायन। दूसरा प्रसंग है महारास के सूत्रपात का। श्रीकृष्ण ने बाँसुरी बजा दी है। बाँसुरी की तान ने व्रज के हृदय के द्वारों को सर्वदूर खटखटा दिया है। शुकदेव जी लिखते हैं - 'निशम्य गीतं तदनंगवर्द्धनम् व्रजस्त्रियः कृष्ण गृहीत मानसाः।' यह 'व्रज' उपर्युक्त व्रजों से भंगिमा में किंचित् भिन्न है; विलक्षण है। इस व्रज को वंशी की माधुर्यमयी तान ने सिरजा है। जहाँ-जहाँ तक यह तान गयी; वहाँ-वहाँ तक वह गोपियों किंवा व्रजस्त्रियों के चित्त को भेद गयी है। उनका चित्त श्रीकृष्ण द्वारा ग्रहण कर लिया गया है। वे स्वेच्छा से आयीं हैं, यह ठीक है; किन्तु इस स्वेच्छा में परवशता के रंग इतने गहरे हैं; इतने स्थायी हैं कि उनसे मुक्ति पाना इन व्रजस्त्रियों के लिए असम्भव हो गया है। श्रीकृष्ण की बाँसुरी की तान ने जिन चित्तों को स्पन्दित नहीं किया; वे इस 'व्रज' के बाहर ही रह गये; जैसे मथुरा। व्रज से चतुर्दिक घिरी; यमुना से सीझी; फिर भी 'व्रज' नहीं और इसीलिए 'तीन लोक से न्यारी'। यह 'व्रज' कालातीत व्रज है। काल की साक्षी में रूप ग्रहण करने वाले इतिहास से उत्तीर्ण; उससे परे।

कालबद्ध इतिहास के पास शूरसेन जनपद है; प्राचीन भारत के महाजनपदों में से एक। यह धर्म, कला और भाषा के सन्दर्भ में केवल उत्तरापथ को ही नहीं; अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष को गहराई से प्रभावित करता है; सघनता से रचता है। भागवती उपासना की समन्वयकारी दृष्टि की प्रसूता यह भूमि यक्ष-पूजा, नाग-पूजा और मातृ देवियों की पूजा को विष्णु की विभूतियों में रूपान्तरित कर भावात्मक एकता के सुदृढ़ सूत्रों की निर्मात्री है। बौद्ध, जैन और भागवती परम्पराओं के संगम और समन्वय गाथा भी; कभी यहीं पर लिखी गयी।

इतिहास में यह 'व्रज' विभिन्न कला रूपों के उद्भव और उत्कर्ष की भूमि है। नर-नारियों के सर्वोत्कृष्ट रूपों और भंगिमाओं के सृजन की गाथा इस भूमि के भग्नावशेषों से सुनी जा सकती है। गायन-वादन और नृत्य के क्षेत्र में नारायण-गीतों, वंशी-वादन और रास-नृत्य की परम्पराएँ इस 'व्रज' की अपराजित जिजीविषा की साक्षी हैं। कृषि, वाणिज्य और गौ-पालन की दृष्टि से यह 'व्रज' पाटलिपुत्र, कौशाम्बी और साकेत से आने वाले प्राच्य सार्थवाहों और कपिशा, तक्षशिला तथा शाकल से आने वाले उदीच्य सार्थवाहों के मिलन और पारस्परिक विनिमय का केन्द्र रहा है।

'ब्रज' के इस उत्सवधर्मी स्वभाव की एक भंगिमा उत्सव-विशेष में अर्पित किये जाने वाले भोग-प्रसाद में भी अनुभव की जा सकती है। अक्षय तृतीया पर बेसन के लड्डू, झूलनोत्सव पर घेवर-फैनी, राधाष्टमी पर मठे की अरबी, शरदोत्सव पर चन्द्रकला, बिहार-पंचमी पर मोहन-भोग, होलियों में खोमचा और धुलैड़ी पर जलेबियों का 'फगुआ' इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

राजनीतिक दृष्टि से सूर्यवंश और चन्द्रवंश के प्रतापी राजाओं की इस कर्म-भूमि में कभी शिशुनाग वंश का तो कभी नन्दवंश का शासन रहा। नन्दों के बाद मौर्यों ने इसे सँवारा सम्राट अशोक के बनाये स्तूपों की चर्चा तत्कालीन यात्रियों के विवरणों में अंकित है। ई. पू. 185 से 100 तक शुंगों ने इसी भूमि को भागवत-धर्म के उन्नयन का केन्द्र बनाया। शकों ने ऐतिहासिक व्रज को ध्वस्त किया तो मालवों ने शकों का निर्मूलन कर विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया। कुषाण वंश का देवकुल इसी व्रजभूमि के अंक से उद्घाटित हुआ। कनिष्क के तीन सत्ता केन्द्रों में से एक 'मथुरा' रहा। चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शकराज का वध और ध्रुवदेवी के उद्धार किए जाने की घटना की साक्षी रही है; यह भूमि। महाकवि कालिदास ने इसी वृन्दावन को कुबेर के चैत्ररथ - वन से अधिक श्री और शोभा सम्पन्न कहा।

मित्रो! हर्षवर्द्धन के काल में हेनत्सांग ने इसी व्रज के वैभव को लिपिबद्ध किया। तदन्तर, यह व्रज गुर्जर-प्रतिहारों के अधीन रहा। 1017 ई. में महावन के राजा कूलचन्द्र द्वारा महमूद गजनवी के प्रबल प्रतिवाद की कथाएँ यमुना की लहरों की कल-कल ध्वनि में आज भी सुनी जा सकती हैं। कन्नौज नरेश विजयचन्द्र पाल द्वारा 1150 ई. में निर्मित श्रीकृष्ण जन्म-स्थान का भव्य मन्दिर 1517 ई. में सिकन्दर लोदी की धर्मान्धता का शिकार हुआ। 1515 ई. में इसी मन्दिर में चैतन्यदेव ने श्री केशवदेव के दर्शन किये

थे। आगे चलकर इतिहास के इन्हीं खण्डहरों पर जहाँगीर के शासनकाल में ओरछा के राजा वीरसिंह देव ने 35 लाख रुपये व्यय कर श्रीकृष्ण जन्म-स्थान पर केशवदेव के नये मन्दिर को साकार किया।

यह इतिहास की कथा है - इसमें एक ओर, यदि निर्माणों का उत्सव है; विजय का उन्माद है; वाणिज्य का उत्कर्ष है; कलाओं की सृष्टि है; विद्याओं का सृजन और जीवन के आमोद-प्रमोद हैं तो दूसरी ओर; आक्रमणों की आँधियाँ हैं; विध्वंसों के वज्रपात् हैं; लुटेरों की लूट है; कला-कृतियों और देव मन्दिरों का विखण्डन है; रक्तपात् हैं; आँसू हैं; हाहाकार हैं।

यह उस व्रज की कथा है - जो इतिहास में निबद्ध है; काल से परिसीमित है। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी इस 'व्रज' के लिए नये स्वप्न, नयी आकांक्षाएँ, नयी कल्पनाएँ लेकर आती है। यही वह समय है जब 'व्रज' धीरे से 'ब्रज' में रूपान्तरित होने लगता है। माया और काल दोनों ही उसकी ठोकरों में आ जाते हैं। आचार्यों का आगमन होता है - देव-विग्रहों का प्राकट्य और उनकी प्रतिष्ठा, इस काल को नयी दिशा देने लगते हैं।

सहस्राब्दियों से मौन हो गयी बाँसुरी फिर से तान भरती है और जहाँ-जहाँ तक यह तान विस्तार पाती है; 'ब्रज' भी वहाँ-वहाँ तक विस्तीर्ण होता चला जाता है। यह 'भाव' का ब्रज है। 'ब्रज-भाव' का महोत्सव है; महोत्कर्ष है।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि यह 'ब्रज-भाव' आखिर है क्या ? बन्धुओ! मेरे अनुभव में यह वही 'भाव' है जिसके नयनोन्मीलन मात्र से पाषाण कला-कृतियाँ बनने को मचल उठते हैं; तूलिकाएँ फलक पर इन्द्रधनुषी रंगों के साथ कुछ इस तरह खेलने लगती हैं कि पलक मारते ही फलक यमुना की कल-कल ध्वनि से गूँजता, वृक्षावलियों के मध्य गुजरते मन्द-समीर के स्पर्श से पुलकित होता; गोवर्द्धन की श्री-शोभा से विमुग्ध होता; गोपियों की मुख-कान्ति से प्रदीप्त होता श्रीराधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं की रंगभूमि बन जाता है। इसी भाव के स्पर्श से कवि-कंठ में सोयी पड़ी भारती नवोन्मेष से झंकृत हो उठती है; बहने लगती है; संगीत इस धारा को वेगवान करता है; नृत्य भंगिमाओं की सृष्टि करने के लिए थिरक उठता है; वाद्य-स्वर के संधान में तल्लीन हो जाते हैं और इसी सबके बीच 'ब्रज' लोक के आवरणों का अतिक्रमण करता है; बाँसुरी की तान इसके पोर-पोर में रस घोलने लगती है।

सारी दिशाएँ इस 'ब्रज' की ओर उन्मुख हो अत्यन्त वेग से दौड़ पड़ती हैं। पूर्व से चैतन्यदेव रूप-सनातनादि के साथ ब्रज की ओर चल देते हैं; दक्षिण का प्रतिनिधित्व वल्लभाचार्य करते हैं; धुर पश्चिम मुलतान क्षेत्र का प्रतिनिधित्व स्वामी हरिदास की उपस्थिति से होता है; मध्य भारत से हरिराम व्यास ब्रजभूमि की ओर प्रस्थान करते हैं; ब्रज के अपने हृदय का संगीत और कवित्व सूरदास आदि का रूप ग्रहण कर बाँसुरी के रस में आत्म-विसर्जन करने लगता है। मीरा अँजुरी-भर आँसुओं के साथ मेवाड़ से ब्रजोन्मुख हो उठती हैं; रसखान और ताज-धर्म की वर्जनाओं से उन्मुक्त हो जाते हैं।

यही वह समय है जब भक्ति के अनेक पारम्परिक सम्प्रदाय नयी प्राणवत्ता से भर उठते हैं। मध्व-सम्प्रदाय का नवोन्मेष चैतन्य-सम्प्रदाय के रूप में होना; इसी काल की घटना है। विष्णुस्वामी की उच्छिन्न- परम्परा को श्री वल्लभाचार्य 'पुष्टिमार्ग' के रूप में इसी काल-खण्ड में; पुनः प्राणवन्त करते हैं और निम्बार्क-सम्प्रदाय में ब्रज-वृन्दावन की अनुरक्ति कुछ अधिक गहरे; अधिक प्रभावी रूप में अभिव्यक्ति पाती है।

यह 'व्रज' के 'ब्रज' में रूपान्तरित होने का ही परिणाम है कि 'प्रेम' के रूप में भक्ति की तात्त्विक व्याख्या और भक्त की भूमिका को लेकर चिन्तन के नये क्षितिजों का उद्घाटन भी इसी काल में होता है। परिणामतः उपासना की नयी भूमिकाएँ रूपाकार ग्रहण करती हैं। गोस्वामी हित हरिवंश जी 'श्री राधाचरण प्राधान्य' के संकल्प के साथ 'भजन की नयी रीति' का प्रवर्तन करते हैं। राधावल्लभ- सम्प्रदाय का उदय होता है।

इसी काल-खण्ड में, प्रेम-तत्त्व के सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिन्तन का परिपाक श्री श्यामा कुंजबिहारी के 'नित्य-बिहार' के रूप में सामने आता है। 'तत्सुखसुखित्वमय सखी-भाव' की मनोभूमिका के साथ उपासक रसोपासना के इस नव्यतम पथ का पथिक बनता है। स्वामी हरिदास उपासना के इस मार्ग के 'मंत्र-द्रष्टा' बनते हैं। 'रसोपासना' अपनी शिखरता को प्राप्त

करती है। कालान्तर में; यह मार्ग 'सखी-सम्प्रदाय' के नाम से लोक-विश्रुत होता है।

मित्रो! यदि, भक्ति के विशद् शास्त्रीय विवेचन का कार्य श्री रूप गोस्वामी और श्री जीव गोस्वामी अपनी प्रचण्ड-मेधा और अछोर सहृदयता के साथ इसी 'ब्रज' में बैठकर करते हैं; तो लोक-जीवन की

भाव-सत्ता को भी अपनी राशि-राशि अभिव्यक्ति इसी 'ब्रज' में और इसी 'ब्रजभाषा' में अगणित कवि-कण्ठों के द्वारा मिलती है। भक्ति-काव्य की इस कालिन्दी के मन्द-मन्थर प्रवाह में काव्य के अभिजात्योत्पन्न दर्प का लोक की सहजता के साथ आत्म-विसर्जन होना; क्या इस काल की; 'व्रज' के 'ब्रज' में रूपान्तरित हो जाने के इस समय की कम बड़ी घटना है? राज-प्रासादों से लेकर देवालयों तक और नगरों से लेकर गाँव की झोंपड़ियों और खेतों तक सर्वत्र एक जैसी भाव-धारा का अविच्छिन्न और निर्बाध-प्रसार इस नवोदित 'ब्रज' का ही आत्म-प्रकाश है।

भावोन्मेष के इन चरम क्षणों में श्रीकृष्ण भी भक्तों के भाव-लोक में नयी-नयी भंगिमाएँ ग्रहण करते हैं। वे न वासुदेव रहते हैं; न द्वारिकाधीश; वे गोविन्द हो जाते हैं; मदनमोहन, राधारमण, गोपीनाथ हो जाते हैं; राधावल्लभ हो जाते हैं; जुगल-किशोर हो जाते हैं; कुंजबिहारी और बाँकेबिहारी हो जाते हैं। यमुना जो इतिहास के उत्थान-पतनों को देखते-देखते 'विरजा' हो चली थी; रागोत्तीर्ण हो चली थी; भूल गई थी कि वह 'कृष्ण-प्रिया' है; इस काल में, श्री हित जी उसे कृष्ण- प्रिया 'कालिन्दी' के रूप में पुनराविष्कृत करते हैं। यमुनाष्ट में उन्हीं के शब्द हैं -

प्रफुल्लपंकजाननां लसन्नवोत्पलेक्षणाम्
रथांगनामयुग्मकस्तनीमुदार हंसकाम्।
नितंबचारुरोधसां हरिप्रियां रसोज्वलां
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरन्तमोहभंजिनीम्।।

यहाँ कलिन्दनन्दनी अर्थात् 'कालिन्दी' उस सूर्य की पुत्री हैं जिसकी किरणों में

जीवन के सारे रंग; सारी उमंग, सारे रूप, सारे उत्साह नित्य क्रीड़ारत रहते हैं। इस कालिन्दी के सतत संसर्ग में 'ब्रज' के उत्सवधर्मी स्वभाव का सृजन नये सिरे से होता है। अक्षय तृतीया के चन्दनोत्सव की सुगन्ध और शीतलता किसके अन्तःकरण को पुलकित नहीं करती? प्रचण्ड ग्रीष्म की लपटों के मध्य मोगरा के सुवासित पुष्पों से निर्मित फूलबँगले; रायबेल, मोतिया, मालती, बेला, जवा, सेवती और टगर की कलियों से सुचित्रित श्री युगल के वस्त्राभरण; वर्षा ऋतु में झूलों की मनोहारी छटा, भाद्रपद मास में श्रीकृष्ण और राधा के जन्मोत्सव पर उल्लास और उछाह का परम-प्रतिनिधि-दधिकाँदा; श्राद्ध पक्ष में पुष्पों और रंगों से विनिर्मित साँझियों की मनोरम छटाएँ; शारदीय-पूर्णिमा पर जन-मन को बाँसुरी की मधुर तान से रससिक्त करती रासोत्सव की धूम और दीपावली की जगर-मगर 'ब्रज' के इसी उत्सवधर्मी स्वभाव के विभिन्न रूप हैं।

बसन्त के आगमन की सूचना 'ब्रज' में ढफ की धधकार के साथ फैलती है। होली का महोत्सव विविध प्रकार के गुलालों के साथ-साथ केशर की कीच, चोबा, चन्दन, इत्र, अरगजा और कुमकुमों की धमा-चौकड़ी में मौज मनाता पिचकारियों से छूटती केसरिया रंग की फुहारों के बीच अपने उत्कर्ष तक पहुँचता है।

'ब्रज' के इस उत्सवधर्मी स्वभाव की एक भंगिमा उत्सव-विशेष में अर्पित किये जाने वाले भोग-प्रसाद में भी अनुभव की जा सकती है। अक्षय तृतीया पर बेसन के लड्डू, झूलनोत्सव पर घेवर-फैनी, राधाष्टमी पर मठे की अरबी, शरदोत्सव पर चन्द्रकला, बिहार-पंचमी पर मोहन-भोग, होलियों में खोमचा और धुलैड़ी पर जलेबियों का 'फगुआ' इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त अन्नकूट का भात और छप्पन भोग के आयोजनों के साथ-साथ श्रीनाथ जी का कुनबाड़ा, शीतकाल में श्री राधावल्लभ लाल की खिचड़ी और दैनिक-सेवा में बरसाने के श्रीजी मन्दिर की पान की बीरी, नन्दगाँव के श्रीनन्दनन्दन जू का फुलका, वृन्दावन के श्रीराधारमण जी की कुलिया और श्री बाँकेबिहारी जी का दूध-भात भी इसी उत्सवधर्मिता का परिचायक है।

इस तरह; यह 'व्रज' अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ 'ब्रज' में रूपान्तरित होकर कोटि-कोटि जन की श्रद्धा केन्द्र बनता है। ❑